॥ ओ३म् ॥

श्री गोविन्दराम हासानन्द स्मृतिमाला पु० ५

सामवेद शतकम्

सामवेद के सौ मन्त्रों का अनूठा एवं अपूर्व संकलन

संकलनकर्ता तथा सम्पादक
ब्र० जगदीशचन्द्र 'विद्यार्थी'
विद्यावाचस्पति

गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है
वेद का पढ़ना पढ़ाना और
सुनना सुनाना सब आर्यों का
परम धर्म है

'महर्षि दयानन्द'

प्रथम संस्करण शिवरात्रि १९६१

प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली।

मुद्रक अनिल प्रिंटिंग ऐजन्सी
द्वारा कलर प्रिंटिंग प्रेस
देहली।

मूल्य एक रुपया

भूमिका

'वेद' विद्या के अक्षय भण्डार और ज्ञान के अगाध समुद्र हैं। उनमें वैदिक संस्कृति का सर्वोच्च चित्रण है और मानवता के आदर्शों का पूर्णरूपेण वर्णन है। वेदों के अध्ययन, मनन और तदनुसार आचरण से मनुष्य अपने स्वरूप को जान कर तथा लक्ष्य को पहचान कर अपने लौकिक और पारलौकिक जीवन को आनन्दमय बना सकता है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। मानवमात्र के कल्याणार्थ सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने चार ऋषियों को वेद ज्ञान प्रदान किया था। प्रभु ने सामवेद का प्रकाश आदित्य ऋषि के हृदय में किया।

आकार की दृष्टि से सामवेद सब से छोटा है परन्तु महत्त्व की दृष्टि से सब से बड़ा है। योगेश्वर कृष्ण ने इस की महिमा का गान करते हुए कहा है "वेदाना सामवेदोऽस्मि।" (गीता० १०।२२) वेदों में मैं सामवेद हूँ। छान्दोग्योपनिषद् ३।३।१ में "सामवेद एव पुष्पम्" अर्थात् सामवेद पुष्प के समान है कह कर इसकी महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। पुष्प छोटा सा होता है परन्तु उसका महत्त्व उसके सौन्दर्य और सुगन्ध के कारण होता है।

सामवेद उपासना काण्ड प्रधान है। इसमे उच्च कोटि के आध्यात्मिक तत्वो का विशद वर्णन है जिन पर आचरण करने से मनुष्य अपने जीवन के चरम लक्ष्य–प्रभु दर्शन की प्राप्ति कर सकता है।

प्राचीन काल मे सामवेद का मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध था। यज्ञो को आकर्षक और प्रभावशाली बनाने के लिये साम गान किया जाता था। महर्षि दयानन्द ने भी प्रत्येक संस्कार के पश्चात् साम गान का विधान किया है परन्तु यह प्रणाली नष्ट हो रही है। आर्य जगत् के कर्णधारो और यज्ञप्रेमियो को इसके उद्धार का उपाय करना चाहिये।

सामवेद के मुख्य दो भाग है पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। दोनो के मध्य मे महानाम्न्यार्चिक है। पूर्वार्चिक मे चार पर्व अथवा काण्ड है और इसकी मन्त्र संख्या ६४० है। इसमे ६ प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक मे दो दो अर्धप्रपाठक हैं। एक एक अर्धप्रपाठक मे पाच पाच दशतिया हैं। दस ऋचाओ के समूह को दशती कहते हैं परन्तु कितनी ही दशतियो मे ७, ६, १२, १४ आदि कम और अधिक ऋचाए भी है। महानाम्न्यार्चिक मे १० मन्त्र है।

उत्तरार्चिक मे २१ अध्याय अथवा प्रपाठक है। इसमे दशतियो का व्यवहार नही है। इस अर्चिक मे ४०२ सूक्त हैं और १२२५ मन्त्र हैं। इस प्रकार

सामवेद की पूर्ण मन्त्र संख्या १८७५ है।

सामवेद की एक सहस्त्र शाखाएं थी परन्तु अब वे उपलब्ध नहीं हैं सामवेद की व्याख्या रूप इसके आठ ब्राह्मण हैं। केन और छान्दोग्य दो उपनिषदें हैं।

कुछ लोगों का विचार है कि सामवेद में ७५ मन्त्रों को छोड कर शेष सब मन्त्र ऋग्वेद के हैं। गान की दृष्टि से उनका पृथक् संग्रह कर दिया गया है परन्तु यह विचार भ्रामक है। साम और ऋग्वेद के पाठों में भेद है और एक ही अक्षर भेद से अर्थ में महान् अन्तर हो जाता है।

इस शतक में मन्त्रों का संकलन आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० तुलसीराम स्वामी कृत भाष्य से किया है।

प्रत्येक गृहस्थ में वेद का साहित्य हो। हमारे घर वैदिक ध्वनि से गूंजे। हम वेद का स्वाध्याय करें। वेद मानव जीवन का अङ्ग बने। प्रत्येक व्यक्ति वेद पढ़ सके और उसे समझ सके इसके लिए ही हमारा प्रयास है।

वेद सदन जगदीशचन्द्र विद्यार्थी
८ ई. कमला नगर, दिल्ली-६

॥ मन्त्रानुक्रम ॥

९४

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थमाला

स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

पुष्प-५

श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

सवत् १६४३ मे शिवारपुर सिन्ध मे प्रसिद्ध गो भक्त श्री हासानन्द जी के गृह को एक बालक ने अपने आलोक से आलोकित किया। यही बालक आगे चलकर गोविन्दराम हासानन्द के नाम से विख्यात हुए।

जिस समय आपकी आयु केवल १७ वर्ष ही थी आप के पिता जी सर्वात्मना गो रक्षा मे लग गये और गृहस्थ का भार इन पर डाल दिया गया।

कलकत्ता मे आजीविका का कार्य करते हुए कुछ मित्रो के संसर्ग से आपका झुकाव आर्य समाज की ओर हो गया। आर्य समाज के प्रति उनका यह प्रेम प्रतिदिन बढ़ता ही गया और इसी प्रेम के कारण अन्त मे उन्हे घर से निकलना पड़ा।

आपको साहित्य प्रचार की लग्न और धुन आरम्भ से थी। जब आपने अपने मित्र के साथ कलकत्ते मे स्वदेशी कपडे की दुकान खोली तो वहा न केवल वैदिक साहित्य ही रखते थे अपितु बँग

मंमो के पीछे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश का विज्ञापन भी बगला भाषा मे छपा देते थे।

श्री गोविन्दराम जी अनेक वर्षों तक आर्य समाज कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता के सभासद रहे। समाज का कार्य करते हुए उन्होने अनुभव किया कि मौखिक प्रचार के साथ साहित्य प्रचार होना भी आवश्यक है। यह विचार उठते ही आप ने अपने मित्रों की सहायता से आरम्भ मे आर्य नेताओ के चित्र तथा नमस्ते आदि के मोटो छपवाये फिर दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर सत्यार्थ प्रकाश छपवाया। पहले सत्यार्थ प्रकाश का का मूल्य ढाई रुपया था और फिर भी ग्रन्थ मिलता नही था। आप ने मूल्य केवल एक रुपया रक्खा। इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश अल्प मूल्य मे मिलने लगा। इस सबका श्रेय आप को ही है।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन के पश्चात् तो आप ने साहित्य की एक बाढ सी ला दी। अपने कार्य-क्षेत्र को अधिक विस्तृत करने के लिये आप १६३६ मे देहली आये और मृत्यु पर्यन्त देहली मे ही रहे।

वैदिक साहित्य के प्रकाशन मे पग पग पर कठिनाइया आई अन्य प्रकाशक मैदान छोड कर भाग गये परन्तु आप एक दृढ चट्टान की भांति अटल रहे।

आपने वैदिक साहित्य का प्रकाशन ही नहीं किया अपितु अनेक व्यक्तियों को लिखने के लिये प्रोत्साहित भी किया। मैं भी साहित्य क्षेत्र जो कुछ कर सका हूँ और कर रहा हूँ इस का श्रेय श्री गोविन्दराम जी को ही है। अपने उत्तराधिकारी के रूप में वे आर्य जगत् के लिये श्री विजय कुमार जी को छोड़ गये हैं जो उनके ही पद चिह्नों पर चलते हुए आर्य साहित्य के प्रकाशन में संलग्न है।

३३ वर्ष तक निरन्तर साहित्य सेवा करते हुए ऋषि दयानन्द का अनन्य भक्त, आर्य समाज का दीवाना तथा वैदिक साहित्य के लिये तन मन और धन को न्योछावर करने वाला यह आर्यवीर २५ फरवरी १९६० को ऋषि बोधोत्सव के दिन ब्रह्म-मुहूर्त में परलोक वासी हो गये। परन्तु कौन कहता है कि गोविन्दराम जी मर गये। डाक्टर सूर्यदेव जी के शब्दों में—

दयानन्द के भक्त दृढ़, हा प्रिय गोविन्दराम।
आर्य जगत में रहेगा सदा आप का नाम॥

"विद्यार्थी"

क्या आप अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहते है ? क्या आप अपने परिवार को स्वर्गधाम बनाना चाहते हैं ? क्या आप समाज मे प्रेम की गङ्गा बहाना चाहते है ? क्या आप राष्ट्र मे एकता उत्पन्न करना चाहते है ? क्या आप विश्व मे शान्ति स्थापित करना चाहते हैं ? क्या आप मानवमात्र को नही नही प्राणीमात्र को सुखी करना चाहते है ? यदि हा तो आज ही अपने घर मे

वेद मन्दिर

की स्थापना कीजिये। वेद प्रभु प्रदत्त वह दिव्य रसायण है जिसके सेवन से मनुष्य शरीर मन और आत्मा से बलिष्ठ बनता है। वेद का स्वाध्याय जीवन मे नव स्फूर्ति उल्लास और चेतना उत्पन्न करता है। इसके स्वाध्याय से व्यक्ति सच्चे अर्थों म मानव = आर्य बनता है।

प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय कीजिये उसके अर्थों को समझिये और तदनुसार अपने जीवन का निर्माण कीजिये।

—ॐॐॐ—

[१]

प्रभो ! आ

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

पदार्थ :—हे (अग्ने) प्रकाशमय ! आप हमारे (बर्हिषि) यज्ञ में अर्थात् ज्ञानयज्ञरूप ध्यान में (आयाहि) प्राप्त हूजिये (गृणानः) आप स्तुति किये हुए हैं, (होता) आप सब को सब पदार्थों के दाता है । (नि सत्सि) विराजिये । किस लिए ? (वीतये) हृदय में प्रकाश करने के लिए और (हव्यदातये) भक्ति का फल देने के लिए ।

भावार्थ—"हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! आप ऐश्वर्यों के दाता है । हम आपकी स्तुति करते है । हमारे हृदय मन्दिरों को अपनी ज्ञान ज्योति से आलोकित करने के लिए हमारे हृदय में विराजिये ।" —'सम्पादक'

[२]
हृदय कमल में दर्शन

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत ॥ ९ ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञानप्रद ! परमात्मन् ! (त्वाम्) तुझ को (अथर्वा) ज्ञानी पुरुष (मूर्ध्न) मस्तिष्क से और (विश्वस्य) सब के (वाघत) वाहक (पुष्करात्) हृदय कमल (अधि) में (निरमन्थत) आविर्भूत=प्रत्यक्ष करता है।

भावार्थ—परमात्मा ज्ञानियों के हृदय में प्रकट होता है परन्तु सामान्यतया नहीं किन्तु मस्तिष्क से अर्थात् विचार के यत्न से। इस मन्त्र में हृदय को सब का वाहन बताया गया है। यथार्थ में हृदय के ज्ञान बिना प्राणीमात्र जड़ है और हिलचल सबने का असमर्थ है इसलिए हृदय ही सब का वाहन है।

[३]

प्रभो ! तू ही रक्षक और मार्ग दर्शक

अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे।

देवोह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥

पदार्थ —(अग्ने) हे जगदीश ! (महे) पूर्ण (ऊतये) रक्षा के लिए (विवस्वत्) सुख मे वसाने वाले यज्ञादि कर्म को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ-भर) पूर्ण कीजिये क्योंकि आप ही (नः) हमारे देखने के लिये (देव.) प्रकाशक (असि) हैं।

भावार्थ —परमात्मन् ! यज्ञादि कार्यों मे हमारी सहायता कीजिये जिस से हम सुख मे निवास करें। आप ही बड़े भारी रक्षक और मार्ग दिखाने वाले हैं। आप ने ही ज्ञान और श्वास आदि, इन्द्रियां दी हैं, वे इन्द्रियां भी आप की सहायता से अपने काम करने मे समर्थ होती हैं।

[४]

प्रातः सायं प्रभु-उपासना

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि ॥ १४ ॥

पदार्थ—(अग्ने) मार्गदर्शक ! परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (धिया) मन से (नम भरन्त) नमस्कार लिये हुए (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्त) साय और प्रात (त्वा) आप की (उप एमसि) उपासना करें।

भावार्थ—इस मन्त्र में प्रात साय नित्य प्रति मनुष्य मात्र को परमात्मा की उपासना मन लगा कर करने की शिक्षा दी गई है। ब्रह्मयज, सन्ध्योपासन के अनुष्ठान का समय बताया गया है। दोषा रात्रि का और वस्त दिन को कहते हैं सो जिन गृहाश्रमी आदि मनुष्यों से अन्य कार्यों के वश समस्त दिन रात्रि म उपासना नही हो सकती, क्योंकि वद ने उन उन आश्रमो के अन्य कर्तव्य भी बतलाये हैं जिन का करना भी आवश्यक है और समय चाहता है। इसलिये रात्रि दिन के मध्य में सकोच विचिकित्सा समझ कर प्रात साय समझना ठीक है।

[५]

प्रभो ! दर्शन दो

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १६ ॥

पदार्थ:—(अग्ने) हे ज्ञानमय ! तुम (मरुद्भि) उपासको से (गोपीथाय) आनन्द लाभ के लिये (त्यम्) उस (चारुम्) रमणीय (अध्वरम्) ज्ञानयज्ञ भूमि=हृदय देश को (प्रति) लक्ष्य करके (प्रहूयसे) ध्यान किये जाते हो। वह तुम (आ गहि) प्राप्त होओ।

भावार्थः—अर्थात् परमात्मा जो ज्ञानमय है उस का, ज्ञान यज्ञ के ऋत्विज् (मरुत्) उपासक लोग, (गोपीथाय) सोमपान के तुल्य परमानन्द की प्राप्ति के लिये ध्यान करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि सुन्दर यज्ञस्थल जो हमारा हृदय देश है उस में परमात्मा हमें मिले।

[६]

ईश्वर का न्याय

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा य सद्विश्व न्यत्रिणम् ।
अग्निर्नो वसते रयिम् ॥ २२ ॥

पदार्थ —(अग्नि) तेजोमय न्यायकारी (तिग्मेन) वज्र तुल्य तीक्ष्ण (शोचिषा) तेज से (विश्वम्) सम्पूर्ण (अत्रिणम्) दुष्ट हिंसक शत्रु को (नि यसत्) निगृहीत करता है (अग्नि) वही (न) हमारे लिये (रयिम्) धनादि को (वराते) बाँटता है।

भावार्थ —परमात्मा न्यायकारी है इसलिये वह परपीडक दुष्टों को दण्ड देता और धर्मात्माओं को उनके कर्मानुसार पदार्थ बाँटता है।

[७]

उसे भक्त ही पाते हैं

अग्ने मृड महाँ असि अय आ देवयुं जनम् ।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ २३ ॥

पदार्थ —(अग्ने) पूजनीय ईश्वर ! हम को (मृड) सुख दो (महान्, असि) तुम महान् हो और (देवयुम्, जनम्) देवयजन चाहने वाले मनुष्य को (अय) प्राप्त होने वाले हो। (बर्हि) यज्ञस्थल मे (आ सदम्) विराजने को (आ-इयेथ) प्राप्त होते हो।

भावार्थ —परमात्मा अपने भक्त उपासकों को सुख देता है और प्राप्त होता है अतः परमानन्द दायक है। परन्तु देवयु अर्थात् देव परमात्मा का यजन पूजन चाहने वाले को ही, न कि अभक्त अनुपासक नास्तिक आदि को। वह महान् है। यद्यपि वह सर्वान्तर्यामी होने और सर्वगत होने से सब ही के हृदय मे विराजता है परन्तु देवयु पुरुष के ही हृदय मे उसको मिलता है, अन्य साधारण को नहीं।

[८]

प्रभो ! वेदोपदेश देकर रक्षा करो

पाहि नो अग्न एकया पाह्यूउत द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥
॥ ३६ ॥

पदार्थ—(ऊर्जाम्पते) हे बलपते ! (वसो) हे अन्तर्यामिन् ! (अग्ने) पूजनीयेश्वर ! (एकया) ऋग्वेद के उपदेश से (न) हमारी (पाहि) रक्षा करो। (उत) और (द्वितीयया) यजुर्वेद की वाणी से (पाहि) रक्षा करो। (तिसृभि गीर्भि) ऋग्यजु सामरूप त्रयी की वाणी से (पाहि) रक्षा करो। (चतसृभि) चारो [वेदो] से (पाहि) रक्षा करो।

भावार्थ—क्योकि मनुष्य की रक्षा जिस प्रकार वेदो के उपदेश से हो सकती है उस प्रकार की राजा आदि भी नही कर सकते। इसलिये मनुष्य को सदा परमेश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह चारो वेदो मे सत्योपदेश से हमारी रक्षा करे।

[६]

तू ही रक्षक तू ही दाता

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥
॥ ४१ ॥

पदार्थ —(वसो) घट घट वासी ! (अग्ने) ज्ञान स्वरूप ! (त्वम्) आप (न) हमारी (ऊत्या) रक्षा के साथ (राधांसि) विद्यादि धनों को (चोदय) प्राप्त कराइये, क्योंकि (त्वम्) आप ही (अस्य, रायः) इस धन के (चित्र रथी) विचित्र दाता हैं। (तु) और (तुचे) सन्तान के लिये (गाधम्, विदा) आश्रय दीजिये।

भावार्थ —जो परमात्मा के प्यारे सदा उसी का भरोसा शरण, आश्रय रखते हैं, उसी के उपासक और आज्ञा पालक रहते हैं वह दयालु परमात्मा उन्हें और उनके सन्तानों को अनेकश विद्या आदि धनों से भरपूर करता और आश्रय देता है तथा उनकी रक्षा करता है क्योंकि वही सम्पूर्ण धनाश्रय और रक्षा के साधनों का स्वामी और उन में वास कर रहा है।

[१०]

समर्पण करदे दर्शन होंगे

अर्दशि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥४७॥

पदार्थ —(गातुवित्तम) योग भूमि को उत्तम प्रकार से जानने वाले लोग (यस्मिन्) जिस परमात्मा में (व्रतानि) कर्मों को (आ, दधु) अर्पण करते हैं, वह (अर्दशि) साक्षात् हो जाता है, उस (सुजातम्) साक्षात् हुए (आर्यस्य) उपासक की (वर्धनम्) उन्नति करने वाले (अग्निम्) परमात्मा को (न) हमारी (गिर) स्तुतियां (उप, उ, नक्षन्तु) उपस्थित हों।

भावार्थ :—अर्थात् जो योगभूमि के उत्तम ज्ञाता लोग उस परमात्मा को ही समस्त शुभ कर्मों का अर्पण कर देते हैं और निष्काम भजन करते हैं वह दयालु उन के हृदय कमलों में प्रकट होता है अर्थात् साक्षात् अनुभव में आता है। तथा उन आर्यों की वृद्धि-उन्नति करता है। इसलिये उस साक्षात् हुए जगत् पिता को हमारी स्तुतियां प्राप्त हों।

[११]

प्रभो ! ज्योति जगा

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टय ॥
॥ ५४ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! (मनु) मैं मननशील मनुष्य (शश्वते जनाय) सनातन पुरुष के लिये अर्थात् आप की प्राप्ति के लिये (त्वाम्) आप (ज्योतिः) ज्योति स्वरूप को (निदधे) निरन्तर ध्यान करता हूँ । इस से आप (कण्वे) मुझ मेधावी मे (दीदेथ) प्रकाश कीजिये जिससे मैं (ऋतजात) सत्यवेद से प्रसिद्ध (उक्षित) महान् होऊं । (यम्) जिस मुझ को (कृष्टय) मनुष्य लोग (नमस्यन्ति) सत्कृत करते हैं वा करें ।

भावार्थ—अर्थात् हे दयालु ! भगवन् ! मैं विचार और ध्यान मे परायण योगी आपका ध्यान करता हूँ । आप ज्योतिस्वरूप हैं कृपया मुझे ज्योति दीजिये । जिस से मैं मेधावी वेदपारगत आप की ज्योति से ज्योतिष्मान् महात्मा और मनुष्यों से नमस्करणीय होऊं ।

[१२]

शुभ कामनाएं

प्रैतु ब्रह्मणस्पति प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥
॥ २६ ॥

पदार्थ —(ब्रह्मणस्पति) परमात्मा (न) हम को (प्रैतु) प्राप्त हो (देवी सूनृता) वेद की सत्य वाणी (अच्छा) भले प्रकार (प्र एतु) प्राप्त हो। (वीरम्) फैलने वाले (नर्यम्) मनुष्यों के हितकारक (पङ्क्तिराधसम्) पाच पुरुषों से सेवित (यज्ञम्) यज्ञ को (देवा) अग्नि वायु आदि देवता (नयन्तु) ले जावें ।

भावार्थ —मनुष्यो को तीन वस्तुओं की कामना करनी चाहिये । १ परब्रह्म की प्राप्ति २ वेद विद्या ३ और यज्ञ । अथवा १ यज्ञ कर्ताओ को मन से परमेश्वर का चिन्तन २ वाणी से वेद मन्त्रो का उच्चारण ३ और कर्म से आहुति छोड़ना और यज्ञ का सेवन पाच पुरुषों से किया जाये अर्थात् १ यजमान २ ब्रह्मा ३ अध्वर्यु ४ होता और ५ उद्गाता।

[१३]

रक्षा करो नाथ !

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर् विह्वयामहे
॥ ५७ ॥

पदार्थ —हे अग्ने ! परमात्मन् ! (न उतये) हमारी रक्षा के लिये (देव, सविता, न) सूर्य देव के समान (ऊर्ध्व) उच्च भाव से युक्त (सु, तिष्ठ) स्थित हूजिये। (वाजस्य) आत्मिक बल के (ऊर्ध्व) उच्च (सनिता) दाता हूजिये। (यत्) क्योंकि हम (अञ्जिभि) स्नेह भक्ति वाले (वाघद्भि) मेधावियो सहित (वि ह्वयामहे) पूजते हैं। (ऊ) पादपूर्णार्थ है।

भावार्थ —हे दयालु ! पिता ! हमारी रक्षा के लिये ऊचा हाथ करिये और हमको सूर्य के से प्रकाशित उच्चभाव से आत्मिक बल दीजिये अर्थात् महती रक्षा और आत्मिक बल का महादान दीजिये। हम सब बुद्धिमानो सहित आपकी शरण में हैं, आपका पूजन करते हैं।

[१४]

प्रभु भक्ति का फल

अयमग्नि सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥६०॥

पदार्थ—(अयम्) यह (अग्नि) परमात्मा वा भौतिक (सुवीर्यस्य, सौभगस्य हि) सुन्दर वीर्य और सौभाग्य का (ईशे) स्वामी है। (राय) धन का (स्वपत्यस्य) सुन्दर सन्तान का (गोमत) और गवादि पशु युक्त होने का (ईशे) अधिकारी है। तथा (वृत्रहथानाम्) वृत्र जो रोगादि शत्रु, असुर उनके नाशों का अधिष्ठाता है।

भावार्थ—परमात्मा की भक्ति और भौतिक अग्नि मे हवन करने वा उससे अनेक विधि शिल्प प्रयोग आदि द्वारा मनुष्यो के बल वीर्य पुरुषार्थ, सौभाग्य धन, सुसन्तान और गवादि पशु प्राप्त होते हैं और सब दुष्ट रोगादि असुर, शत्रुगण का नाश होता है। क्योकि परमात्मा वा भौतिक अग्नि इन सब का ईशिता है।

यज्ञानुष्ठान

आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं
नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।
इडस्पदे नमसा रातहव्यं
सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥ ६३ ॥

पदार्थ —परमात्मा का उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम (पस्त्यानाम्) घरों में (इड पदे) पृथिवी के ऊपर [कुण्ड में] (गृहपतिम्) घर के रक्षक [अग्नि] का (नि दधिध्वम्) नितरां आधान करो (हविषा) घृतादि से (आ जुहोता) सब ओर से होम करो। (मर्जयध्वम्) वेदी के इधर उधर मार्जन करो। (रातहव्यम्) जिसने हव्य दिया उस (होतारम्) होता नामक ऋत्विज को (नमसा) नमस्कार आदि से (सपर्यता) सत्कृत करो। (यजतम्) इस प्रकार यज्ञ करो।

भावार्थ —इससे मनुष्य को यह उपदेश है कि तुम घरों में पृथिवी पर अग्नि कुण्ड में अग्न्याधान करो। घृतादि की आहुति दो। वेदी के समीप मार्जन [शुद्धि] करो। जिस होता आदि से यज्ञ कार्य कराओ उसका नमस्कार आदि से वा अन्न आदि द्रव्यों से सत्कार करो। इस प्रकार स्त्री पुरुष मिल कर यज्ञ किया करो।

[१६]

मृत्यु से पूर्व शरण में जाओ

आवो राजानमध्वरस्य रुद्रं
होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ता-
द्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ६६॥

पदार्थ —हे मनुष्यो ! (व) तुम्हारे (तनयित्नो) बिजली के तुल्य (अचित्तात्) मृत्यु से (पुरा) पहले ही (अध्वरस्य, राजानम्) योग यज्ञ के राजा (होतारम्) कर्मफल दाता (रुद्रम्) पापियों को रोदन कराने वाले (रोदस्यो) द्यावापृथिवी के मध्य में (सत्ययजम्) सच्चा यज्ञ करने वाले (हिरण्यरूपम्) ज्योति स्वरूप (अग्निम्) प्रकाशमान परमात्मा को (अवसे) रक्षा के लिये (आ कृणुध्वम्) बुलाओ।

भावार्थ :—अर्थात् बिजली के समान मृत्यु सिर पर गर्जता है उससे पूर्व ही तुम लोग उक्त गुण युक्त परमात्मा के शरण में प्राप्त हो जाओ, पीछे पछताओगे।

[१७]

प्रातःकाल प्रभु-उपासना

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुत घृतेन।
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥

॥ ७० ॥

पदार्थ —(यस्य) जिस परमात्मा का (प्रतीकम्) स्वरूप (घृतेन) प्रकाश से (आहुतम्) सब ओर से व्याप्त है और जिसकी (सबाध) योगयज्ञ के ऋत्विज (नर) लोग (हव्येभि) भक्तिरूप हव्यो के साथ (ईडते) स्तुति करते है और जो (नमोभि) नमस्कार वा प्रणामों से (सम्, इन्धे) हृदय मे भले प्रकार प्रकाश करता है वह (राजा) तेजोमय (अर्य्य) चराचर का स्वामी (अग्नि) परमात्मा (उषसाम्, अग्रम्) उषाकाल मे (आ, अशोचि) "उपासको के हृदय मे' सर्वत पवित्रता करे।

भावार्थ —मनुष्यो को उचित है कि प्रात काल उठकर परम प्रकाश, उपासको से ध्याये हुये, सर्वाध्यक्ष, सर्वपूज्य परमात्मा का ध्यान करें। जिससे वह अन्त करण को पवित्र करे और अविद्या की निवृत्ति द्वारा सर्व दु ख दूर हो।

[१८]

राजा और योद्धाओं का कर्तव्य

प्र भूर्जयन्त महा विपोधा मूरैरमूर पुरा दर्माणम् ।
नयन्त गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रु न वर्मणा धनर्चिम् ॥ ७४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू (जयन्तम्) जीतने वाले (महान्) बड़े (विपोधाम्) बुद्धिमानों के धारक रक्षक (अमूरम्) बन्धन रहित (पुराम् मूरैः दर्माणम्) दुर्गों का मूल सहित विदारण करने वाले (वना नयन्तम्) चिनगारियों को ले जाने वाले (हरिश्मश्रुम् न) सूर्य की किरण के समान तेजस्वी (धनर्चिम्) अग्नि को तथा (धियम्) पुरुषार्थ को (गीर्भि) वेद वचनानुसार (वर्मणा) कवच के साथ (धा) धारण कर और (प्र भू) समर्थ हो।

भावार्थ—राजा और योद्धाओं को योग्य है कि युद्ध में कवच पहन कर आग्नेय अस्त्र का प्रयोग करें जिससे अपना विजय बुद्धिमान् पुरुषों की रक्षा शत्रु दुर्गों का दलन हो और सामर्थ्य बढ़े क्योंकि अग्नि सूर्य किरण के समान सीधी रेखा में चिनगारियों सहित गोलों द्वारा उक्त कार्य सिद्ध कर सकता है।

[१६]

यज्ञ के तीन फल

इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥
॥ ७६ ॥

पदार्थ—(अग्ने) भौतिकाग्ने! वा परमात्मन्! (ते) तेरे लिये वा तेरी आज्ञानुसार (शश्वत्तमम् हवमानाय) निरन्तर यज्ञ करने के लिये (गोः सनिम्) गवादि पशु जाति के देने वाला (पुरुदंसम्) सर्व कर्म सहायक (इडाम्) अन्न को (साध) सिद्ध करो और (नः) हमारा (सूनुः) पुत्र (तनयः) विस्तार करने वाला (विजावा) पुत्र पौत्रादि का जनयिता (स्यात्) होवे तथा (अग्ने) अग्ने! (सा) वह 'यज्ञ से प्रीति करने वाली (अस्मे) हमारी (सुमति) शोभन मति (भूत) रहे यह ईश्वर से चाहते हैं।'

भावार्थ—इस मन्त्र में यज्ञ के तीन फलों की प्रार्थना है। १-धन धान्यादि, २-सुसन्तान, ३-सुमति। इसी प्रकार वे वेद मन्त्र सर्वेष्टि पुत्रेष्टि आदि यज्ञों के मूल प्रतीत होते हैं।

[२०]

सुखाभिलाषिन्! उसको जान

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्त पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभि ॥ ८७ ॥

पदार्थ —(वाजयन्त) हे अन्नाभिलाषी पुरुषो! (व) तुम्हारे (विशोविश) मनुष्यमात्र के (पुरुप्रियम्) अतिहितकारी (अतिथिम्) निरन्तर गति वाले (शूषस्य, दुर्यम्) सुख के धाम (अग्निम्) अग्नि की (मन्मभि) मन्त्रात्मक (वच) वचनों से (व) तुम्हारे लिये (स्तुषे) प्रशंसा करता हूं।

भावार्थ —अर्थात् परमात्मा का उपदेश है कि हे मनुष्यो! यदि अन्न धन धान्यादि चाहते हो तो मनुष्य मात्र के हितकर निरन्तर गतिशील, सुख के घर अग्नि अर्थात् आह्वनीयादि भौतिक वा मुझ परमात्मा के गुण जानो। मैं तुम्हें वेद मन्त्रों से बताता हूँ।

[२१]

रोगादि को दूर भगाओ

अत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि।
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम् ॥६५॥

पदार्थ—अग्ने! वा परमात्मन्! (यातुधानस्य) दुष्ट दस्यु वा रोगादि के (हर) हरने वाले (बलम्) बल को (हरसा) अपने तेज से (विश्वत) चारो ओर (परि) फैले हुए को (प्रति शृणाहि) नष्ट कर और (रक्षस.) दस्यु वा रोगादि के (वीर्यम्) पराक्रम को (न्युब्ज) नि शेष करके भग्न कर।

भावार्थ—अर्थात् परमात्मा की कृपा और अग्नि के होम और अस्त्रादि प्रयोग से सर्व दुष्टदोष, रोग, दस्यु आदि का नाश हो सकता है। इसलिये मनुष्य को मन्त्रोक्त अनुष्ठान करना चाहिये।

[२२]

ईश्वर के मित्र को दुःख कहां

प्र सो अग्ने तवोतिभि सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभि ।
यस्य त्व सख्यमाविथ ॥१०८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमात्मन् ! वा भौतिक ! (त्व यस्य सख्यम् आविथ) तू जिसकी अनुकूलता को प्राप्त होता है (स) वह (तव) तेरी (वाज कर्मभि) बलकारिणी (सुवीराभि) सुन्दर वीर्य वती (ऊतिभि) रक्षाओ से (प्रतरति) पार हो जाता है।

भावार्थ—जो पुरुष परमात्मा के मित्र हैं वे उसकी ओर से हुई बलवती पराक्रम और पुरुषार्थ वती रक्षाओ मे सर्व दु खो से पार हो जाते हैं। उन्हे आत्मिक बल की सहायता मिलती है। और जो लोग अग्नि के मित्र हैं अर्थात् अनुकूल सेवी है वे भी।

[२३]

प्रभु की सहायता से काम क्रोध का हनन

मा न इन्द्राभ्या ३ दिशः सूरो अक्तुष्वायमत् ।
त्वा युजा वनेम तत् ॥१२८॥

पदार्थः—(इन्द्र) परमात्मन् ! वा राजन् ! वा सूर्य ! (अक्तुषु) अज्ञानकालों में वा रात्रियों में (आ दिशः) चारों तरफ किसी दिशा की ओर से (सूर) काम क्रोधादि शत्रु वा चोरादि वा अन्धकार (न.) हम लोगों को (मा, अभि, आयमत्) न सामने आवे [यदि आवे तो] (त्वा, युजा) तेरे योग से (तत्) उस दुष्ट को (वनेम) हनन करें।

भावार्थः—परमेश्वर की कृपा से काम क्रोधादि शत्रुगण प्रथम तो हम पर आक्रमण ही नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार प्रथम तो राजा के प्रताप से दस्यु प्रभृति दुष्ट प्रबलता ही नहीं कर सकते यदि करें भी तो राजा की सहायता से प्रजा उनको नष्ट करे। तथा सूर्य के प्रकाश से प्रथम तो अन्धकार का प्रभाव ही नहीं हो सकता, यदि कदाचित् रात्रि आदि अन्धकार काल में कुछ प्रभाव हो तो सूर्य की सहायता अर्थात् उससे उत्पन्न हुए प्राणवायुजन्य दीपकादि प्रकाश से उस अन्धकार का नाश हो सकता है।

[२४]

शत्रुओं का दमन

मिन्धि विश्वा अप द्विष परिबाधो जही मृध ।
वसु स्पार्हं तदाभर ॥१३४॥

पदार्थ—"प्रकरणागत इन्द्र ! परमात्मन् ! राजन् ! वा देव विशेष !" (विश्वा) सब (द्विष) द्वेषकर्त्री और (बाध) बाधती हुइयों को (अप मिन्धि) छिन्न भिन्न करो (मृध) संग्रामों को (परि, जहि) सब ओर से मारिये। (तत्) उनका वह (स्पार्हम्) कामना योग्य (वसु) धन (आभर) प्राप्त कराइये।

भावार्थ—राजा का धर्म है कि सज्जनों की रक्षा के लिये दुष्टों की सेनाओं का छेदन भेदन, शत्रुओं का नाश और धन को लेकर न्याय कार्य में व्यय करे। इन्द्र वृष्टि कर्ता का काम है कि घुमड़ घुमड़ कर सामने आते मघों की सेनाओं का छेदन भेदन करके प्रजा के चाहे हुए उनके जल रूप धन को प्रजा को पहुँचाना। सर्व दुष्ट अधार्मिकों के दमन और श्रेष्ठों की रक्षार्थ परमेश्वर से भी प्रार्थना करनी चाहिये।

[२५]

गुणी का यशोगान

इमा उ त्वा पुरुवसोऽभि प्रनोनुवुर्गिर ।
गावो वत्स न धेनव ॥१४६॥

पदार्थ —(पुरुवसो) बहुयज्ञ ! वा बहुधन ! ईश्वर ! वा राजन् ! (इमा) ये (गिर) वाणिया (अभि) चारो ओर से (त्वा, उ) तुझ को ही (प्रनोनुव) प्राप्त होती है। दृष्टान्त (धेनव) दूधवाली (गाव) गौवें (वत्स न) जैसे बछडे को।

भावार्थ —जिस मे गुण अधिक होवे हैं सब ओर से उसी की प्रशसा मे वाणी ऐसे पहुच जाती हैं जैसे दुधार गौवें चारो ओर जगल मे विचरती हुई सायकाल प्यारे बछडे ही के पास को दौडती हैं।

[२६]

वेद ज्ञानी से संसार प्रकाशित

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥१५२॥

पदार्थ—(अहम्) मैं ने (इत् हि) ही (पितु) पालन करने वाले इन्द्र परमेश्वर से (ऋतस्य) सत्य वेद की (मेधाम्) धारणावती बुद्धि (परि जग्रह) ग्रहण की है। (अहम्) मैं (सूर्यइव) सूर्य सा प्रकाशमान (अजनि) प्रसिद्ध हुआ हूँ।

भावार्थ—अर्थात् जो मनुष्य पिता परमात्मा से सत्य वेद विद्या का ग्रहण करते हैं वे ही सूर्यवत् संसार भर को ज्ञान से प्रकाशित करते हैं।

[२७]

सुख प्राप्ति का उपाय

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम् ॥१७१॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) जीवात्मा के (काम्यम्) उपास्य (अद्भुतम्) आश्चर्यस्वरूप (सदसस्पतिम्) सभापति के समान (प्रियम्) हितकारी (सनिम्) कर्मफल प्रदाता 'ईश्वर की उपासना से' (मेधाम्) प्रज्ञा को (अयासिषम्) प्राप्त होऊं।

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा की उपासना करते हैं वे तथा जो सभापति राजा का निर्वाचन करते हैं वे उत्तम बुद्धि, बल, आरोग्यादि द्वारा सुख को प्राप्त होते हैं।

[२८]

उसको हृदय में सींचो

आ व इन्द्र क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥२१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर ! (व) तुममे (शतक्रतुम्) बहुत अनन्त कर्म वाले (महिष्ठम्) अत्यन्त पूजनीय (इन्द्रम्) अपने आत्मा को (आ सिञ्चे) सींचता हूँ। दृष्टान्त (यथा) जैसे (वाजयन्तः) अन्न की उत्पत्ति चाहने वाले लोग (इन्दुभिः) जलों से (क्रिविम्) खेती को सींचते हैं तद्वत्।

भावार्थ—जैसे अन्न रस आदि देह पुष्टि के लिये कृषक लोग खेत को जल से सींचते हैं उसी प्रकार आत्मा की पुष्टि के लिये पूजनीय अनन्त ज्ञान वा कर्म वाले परमात्मा से हमको हृदय सींचने चाहियें। इसलिये परमात्मा ने मनुष्य के हृदय को आत्मज्ञान का खेत बनाया है।

[२६]

बल का दान

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥
॥ २३४ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (अर्वत) अश्व आदि के चढ़ने वाले वीर (नर) पुरुष (वृत्रेषु) शत्रुओं से घेरे जाने पर (त्वाम्) आप का "सहारा लेते हैं" (काष्ठासु) सब दिशाओं में (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक (त्वाम्) आप को "भजते हैं अत" (कारव) हम स्तोता भक्त जन भी (वाजस्य) बल के (सातौ) दान निमित्त (त्वाम्, इत, हि) आपको ही (हवामहे) पुकारते हैं।

भावार्थः—जिस प्रकार सब दिशाओं में सज्जनों के रक्षक आप परमात्मा को, शत्रुओं की भीड़ पड़ने पर, बल प्राप्त करने के लिए, वीर पुरुष पुकारते हैं, इसी प्रकार हे भगवन्! हम भक्त जन भी कामादि शत्रुगण की भीड़ में उनके परास्त करने को बल का दान आप से मांगते हैं।

[३०]

ईश्वर की पूजा

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥
॥ २४२ ॥

पदार्थ —(सखाय) हे मित्रो ! (अन्यत्) और किसी की (मा चित्) मत (विशंसत) स्तुति करो। किन्तु (सुते) मन शुद्ध करने पर (वृषणम्) धर्मार्थ काम को पूरा करने वाले (इन्द्रम् इत्) परमात्मा को ही (सचा) सब मिल कर (स्तोत) स्तुत करो। (च) और (उक्था) स्तोत्रों को (मुहु) बारम्बार (शंसत) पढ़ो तथा (मा रिषण्यत) हिंसा मत करो।

भावार्थ —अर्थात् मनुष्य मात्र को परमात्मा के स्थान में अन्य किसी की स्तुति न करनी चाहिए किन्तु परमात्मा की ही करनी चाहिये और उसी के स्तोत्रों का पाठ करना चाहिये। तथा प्राणीमात्र की हिंसा नहीं करनी चाहिये।

[३१]

प्रभु की कारीगरी

य ऋते चिदभिश्रिष पुरा जत्रुभ्य आतृद ।
सन्धाता सन्धि मघवा पुरुवसुर्निष्कर्ता विह्रु त पुन ॥
॥ २४४ ॥

पदार्थ—(य) जो (मघवा) इन्द्र अर्थात् परमेश्वर (पुरुवसु) बहुत वास हेतु (जत्रुभ्य) ग्रीवादि जोडो से (आतृद) रुधिरोत्पत्ति से (पुरा) पहले ही (अभिश्रिष) चिपकाने के वा जोडने के साधन रस्सी आदि के (ऋते चित्) विना ही (सधिम्) जोड को (सन्धाता) जोड देता है (पुन) और (विह्रुतम्) शीघ्र ही जब चाहे तब (निष्कर्ता) विछोडा करा देता है।

भावार्थ—परमात्मा के कैसे आश्चर्यमय काम हैं कि गर्भ गत प्राणियो के ग्रीवादि अवयवो को चिपकाने के लिये जब तक रुधिर भी उत्पन्न नही होता है तभी समस्त सन्धियो को बना किसी रस्सी आदि साधनो के जोड देता है और जब चाहे तत्काल पुष्ट से पुष्ट बन्धनो को तोड विछोड देता है।

[३२]

कार्यारम्भ और समाप्ति पर प्रभु स्मरण

इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥
॥ २४६ ॥

पदार्थ —हम (देवतातये) यज्ञ के लिये (इन्द्रम् इद्) परमेश्वर की ही (हवामहे) पुकार करें। (अध्वरे) यज्ञ (प्रयति) आरम्भ होने पर (इन्द्रम्) परमेश्वर को पुकार करें। (समीके) यज्ञ समाप्ति वा युद्ध में भी (इन्द्रम्) परमात्मा की सहायता मांगें। (वनिन) सविभाग करते हुए हम (धनस्य) धन के (सातये) दान मिलने के लिये (इन्द्रम्) परमेश्वर की सहायता मांगें।

भावार्थ —प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ और समाप्ति में, युद्धादि विपत्ति के समयों में, व्यापार आदि धनलाभ के अवसरों में सदा परमेश्वर की ही सहायता चाहिये।

[३३]

यज्ञादि पर व्रतधारण

वयमेनमिदा ह्योऽ पीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य सवने सुत भरा नूनं भूषत श्रुते ॥
॥२७२॥

पदार्थः—हे मित्रो ! (वयम्) हम ब्रह्मज्ञानी लोग (एनम्) इस (वज्रिणम्) दुष्टो पर दण्डधारी परमेश्वर को (इत्) ही (ह्य.) भूतकाल मे (आ, अपीपेम्) सर्वतो भाव से प्रसन्न करते रहे हैं। और (नूनम्) निश्चय "आप लोग भी" (अद्य) अब (श्रुते) विख्यात (सवने) यज्ञ मे (सुतम्) स्तुति करने वाले का (भरा) भरण कीजिये (उ) और (तस्मै) उस परमेश्वर के लिये (भूषत) "हृदय को राग द्वेषादि मल दूर करके" सुन्दर भूषित करो।

भावार्थ.—अर्थात् ज्ञानियो की यही परम्परा है कि सर्वकाल मे ज्ञानादि उत्तम अवसरो पर विशेष कर अपने स्वामी परमात्मा की प्रीति के लिये अपने हृदय से पाप आदि कुसस्कारो को दूर करके भूषित करते हैं।

[३४]

ईश्वर तथा राजा की कृपा से धन धान्य

अश्वी रथी सुरूप इद् गोमां यदिन्द्र ते सखा
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप
॥२७७॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर! वा राजन्! (यत्) जब 'मनुष्य' (ते) आप के (सखा) अनुकूल होता है (इत्) तभी (अश्वी) अश्वो वाला (रथी) रथो वाला (गोमान्) गोवो वाला और (सुरूप) सुन्दर रूप वाला होता है तथा (श्वात्रभाजा) धन सहित (वयसा) अन्न से (सचते) संगति करता है। और (सदा) सर्वदा (चन्द्रैः) आह्लादकारक सहचरो के साथ (सभाम्) सभा को (उप, याति) प्राप्त होता है।

भावार्थः—न्यायकारी राजा और परमेश्वर के कृपा भाजन पुरुष ही रथ, गौ, धन धान्य से सुखी और सभा के रत्न बनते हैं।

[३५]

तुझे कभी न त्यागें

महे च न त्वाद्रिव पराशुल्काय दीयसे ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥
॥२६१॥

पदार्थ.—(अद्रिव) हे मेघों के धारक ! (वज्रिव) दुष्टों के ताडनकर्त्ता ! (शतामघ) बहुत धन वाले ! इन्द्र ! परमेश्वर ! (त्वा) आप "हम से" (महे) बड़े (शुल्काय) मूल्य के लिये (च) भी (न) नहीं (परा, दीयसे) त्यागे जाते हैं। (न सहस्राय) न सहस्र के लिये (न, अयुताय) न दस सहस्र के लिये (न, शताय) और न इस से भी बहुत के लिये।

भावार्थ —अर्थात् मनुष्य को चाहिये कि सहस्रों के धन के लिये भी कभी परमेश्वर को न हारें। किन्तु सहस्रादि अनन्त धन जाओ सो जाओ परन्तु परमेश्वर की आज्ञा के विपरीत कुछ न करें।

[३६]

सभी पदार्थ हमारे रक्षक हों

त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रै र्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः
॥२६६॥

पदार्थ —(त्वष्टा) अग्नि (दैव्यं वचः) वेद मन्त्र (पर्जन्य) मेघ (ब्राह्मणस्पति) सूर्य (अदिति) द्युलोक ये सब दिव्य पदार्थ हे इन्द्र ! परमात्मन् ! आपकी कृपा से (न) हमारे (पुत्रै) पुत्रों और (भ्रातृभि) भ्राताओं सहित (नु) शीघ्र (न) हमारी (पातु) रक्षा करें। (न) हमारा (त्रामणम्) रक्षक (वचः) वचन (दुष्टरम्) दुस्तर-सफल होवे।

भावार्थ —अर्थात् परमेश्वर ऐसी कृपा करें कि अग्नि वेद सूर्य आदि पदार्थों द्वारा हमारी रक्षा हो हमारे पुत्रादि की रक्षा हो हमारे वचन सफल हों।

[२७]

कर्मानुसार फल

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥
॥३००॥

पदार्थ —(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (मघवन्) हे परमधनवन् ! आप (कदा चन) कभी (स्तरी) हिंसक (न असि) नहीं हैं। किन्तु (दाशुषे) विद्यादि दान करने वालों के लिये (उप उप इत् नु) समीप समीप ही शीघ्र (सश्चसि) 'कर्मफल' पहुंचाते हैं। (देवस्य) प्रकाशयुक्त (ते) आप का (दानम्) कर्मानुसारी दान (भूय इत्) पुनर्जन्म में भी (नु) निश्चय (पृच्यते) सम्बद्ध होता है।

भावार्थ —अर्थात् परमेश्वर कभी किसी के किसी कर्म को निष्फल नहीं करता, न किसी निरपराध को दण्ड देता है। किन्तु इस जन्म और पुनर्जन्म में प्रत्येक प्राणिवर्ग उस की व्यवस्था से कर्मानुसारी फल का सम्बन्धी (भागी) बनता है।

[३८]

राजा की स्थापना

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा
सनिष्यन्तश्चित् तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य कोना
तना त्मना सह्याम त्वोता ॥३१६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे राजन्! (सुष्वाणास) सोमादि को उत्पन्न करते हुए (चित्) और (वाजम्) धान्यादि का (सनिष्यन्त) न्याय पूर्वक विभाग करते हुए हम (त्वा) आप की (स्तुमसि) स्तुति करते हैं। (तुवि-नृम्ण) हे बहुबल! वा बहुधन! (त्वोता) आप से रक्षा किये हुए हम (यस्य) जिस धनादि की (कोना) कामना करें उस (सुवितम्) प्राप्त करने योग्य धनादि को (न) हमारे लिये (आ भर) प्राप्त कराइये। (तना) विस्तृत धनों को (त्मना) अपने ही द्वारा हम (सह्याम्) आप की कृपा से पावें।

भावार्थ—खेती बाडी, धन, धान्य आदि सब पदार्थों की रक्षा पूर्वक उत्पत्ति और न्याय पूर्वक विभाग, राजा ही के होते हुए होता है अन्यथा परस्पर भक्ष्य भक्षक बन कर नष्ट हो जायें। इसलिये मनुष्यों को न्यायकारी राजा की इच्छा करनी चाहिये।

[३६]

यज्ञानुष्ठान

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता

॥३३८॥

पदार्थ—(देवा) दिव्यस्वभावी (इन्द्रापर्वता) बिजुली और मेघो ! तुम दो (बृहता) बड़े (रथेन) रमणीय मार्ग से (सुवीरा) सुन्दर वीरों वाली (वामी) उत्तम (इष) अन्न सामग्रियों को (आवहतम्) प्राप्त कराओ। (अध्वरेषु) यज्ञों में (हव्यानि) हवन के द्रव्यों को (वीतम्) प्राप्त होओ वा खाओ (गीर्भि) वेद मन्त्रों के साथ (इडय) हवन किये अन्न से (मदन्ता) हृष्ट हुए तुम दो (वर्धेयाम्) बढ़ो।

भावार्थ—बिजली और मेघ जल को बर्षाते हैं। उससे अन्नादि उत्पन्न होते हैं। इसलिये मनुष्यों को यज्ञादि करने चाहिये। जिनमें वेद मन्त्रों के साथ सुगन्ध, मिष्ट पुष्ट रोग नाशक आदि द्रव्य हवन किये जाते हैं और उन से बिजली और मेघ का आप्यायन और वृद्धि होती है।

[४०]

ईश्वर प्रकाशमान् और सर्व व्यापक

आ त्वा सखाय सख्या ववृत्युस्तिर पुरू चिदर्णवां जगम्या ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन्क्षये प्रतरां दीद्यान ॥६४०॥

पदार्थ—प्रकरण से हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (सखाय) अनुकूल रहने वाले भक्त लोग (त्वा) आपके साथ (सख्या) मित्र के (चित्) तुल्य (आ ववृत्यु) वर्ते। आप (अर्णवम्) अन्तरिक्ष समुद्र को (पुरु) अत्यन्त करके (तिर) अदृश्य भाव से (जगम्या) व्याप रहे हैं। हे भगवन् ! (वेधा) विधाता आप (पितु) पिता के (नपातम्) सन्तान को (आदधीत) आधान करें। (अस्मिन् क्षये) इस निवासस्थान जगत् मे (प्रतराम्) अत्यन्त भाव से (दीध्यान) प्रकाशमान हैं।

भावार्थ—अर्थात् हे परमात्मन् ! आप समस्त आकाश मे और उसको उलघन करके भी अदृश्य होकर व्याप रहे हैं। ऐसी कृपा हो कि आपके उपासक सब मनुष्य हों। आपके अनुकूल मित्र के समान वर्तें। आप हर एक पिता को सन्तान वृद्धि दीजिये। आप ही इस जगत् मे अत्यन्त प्रकाशमान हैं।

[४१]

राजा के कर्तव्य

श्रुधी हव तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥३४६॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर वा राजन् ! (महान् असि) आप बड़े हैं अत (य) जो पुरुष (त्वा) आपको (सपर्यति) पूजता अर्थात् आपकी आज्ञानुसार चलता है उस (सुवीर्यस्य) शुद्धवीर्य ब्रह्मचर्यादि वाले (गोमत) गो आदि पशु और पृथिवी आदि के स्वामी की (हवम्) पुकार (तिरश्च्या) अन्तर्धान हुए से (श्रुधि) सुनिये और (राय) विद्याधन (पूर्धि) दीजिये।

भावार्थ—जैसे परमेश्वर अदृश्य रूप से सब की सुनता और कर्मानुकूल धन आदि पदार्थ देता इसी प्रकार राजा को चाहिये कि छिप कर सब की पुकार सुने और क्षत्रपतियों के धन धान्यादि की वृद्धि होने देवे।

[४२]
सदुपदेश से दुर्गुण नाश

आ नो वयो वय. शय महान्त
गह्वरेष्ठा महान्त पूर्विनेष्ठाम् ।
उग्र वचो अपावधी ॥ ३५३ ॥

पदार्थ—हे पूर्वमन्त्रोक्त ! योग विद्यादि ऐश्वर्य-युक्त ! इन्द्र ! (न) हमारी (वय) आयु तथा (महान्तम्) बडे (गह्वरेष्ठाम्) अन्त करण मे स्थित (वय शयनम्) आयु मे निवास करने वाले आत्मा और (महान्तम्) बडे (पूर्विनेष्ठाम्) क्रमागत बुद्धि-तत्व को (आ) आदेश कीजिये। हमारे (उग्र वच) भयानक वचन को (अपावधी) दूर कीजिये।

भावार्थ—अर्थात् विद्वानो के सदुपदेश से मनुष्यो के आत्मा और मन को उत्तम आदेश मिलता है और दुर्वचन आदि दुर्गुण दूर होते हैं।

[४३]-

प्रभु प्रेम से परमानन्द

अच्छा व इन्द्र मतयः स्वर्युवः
सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परिष्वजन्त जनयो यथा पतिं
मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥३७५॥

पदार्थ.—हे मनुष्यो ! (व) तुम्हारी (स्वर्युव.) परमानन्द चाहने वाली (सध्रीची) सीधी सच्ची (उशती) कामना करती हुई (विश्वा. मतय) सारी बुद्धियें (अच्छ) अच्छे प्रकार (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अनूषत) स्तुत करें। दृष्टान्त (न) जैसे (शुन्ध्युम्) शुद्ध (मघवानम्) धनवान् (मर्यम्) मनुष्य को (ऊतये) धन धान्य द्वारा अपनी रक्षा के लिये स्तुत करते हैं तद्वत्। दूसरा दृष्टान्त (यथा) जैसे (जनय.) स्त्रियां (पतिम्) पति को (परिष्वजन्त) आलिङ्गन करती हैं तद्वत्।

भावार्थ—मनुष्य का जितना प्रेम स्त्री पुरुष के परस्पर भाव में है, अथवा जितनी कामना और दीनता, प्रार्थना धन आदि पदार्थों के लिये करते हैं यदि इतना प्रेम और इतनी नम्रता परमेश्वर के प्रति धारण करें तो अवश्य परमानन्द की प्राप्ति और ससार से रक्षा हो।

[४४]

सूर्यचिकित्सा

अपामीवामप स्त्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
आदित्यासो युयोतना नो अंहस ॥ ३६७ ॥

(आदित्यास) सूर्यकिरणे (अमीवाम्) रोग को (अपसेधत) वर्जती हैं। (स्त्रिधम्) बाधक दस्यु चौरादि को (अप) वर्जती हैं। (दुर्मतिम्) काम आदि विकार से दुष्ट बुद्धि को (अप) वर्जित करती हैं। (न) हम को (अंहस) पाप से (युयोतन) पृथक् करती हैं।

भावार्थः—अवश्य सूर्य की किरणो से कई रोग दूर होते हैं, चौरादि का भय निवृत्त होता है, रात्रि मे स्वभाविक रीति पर कामादि के विकार उत्पन्न होते है उन को भी सूर्य की किरणें हटाती हैं। इसलिये किसी अंश मे दुर्मति और पाप से बचना भी सम्भव है।

[४५]

उपासना से कामनापूर्ति

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
उदेव ग्मन्त उदभि ॥ ४०६ ॥

पदार्थ —(गिर्वण) हे वाणी से सेवनीय ! (इन्द्र) राजन् ! (त्वा) आपसे (ईमहे) हम याचना करते हैं (अध हि) तब ही (काम) अभिष्ट कामना को (उप ससृग्महे) समीप स्पर्श करते है। दृष्टान्त (इव) जैसे (उदा-ग्मन्त) जलो के साथ चलने वाले (उदभि) जलो से स्पर्श करते हैं।

भावार्थ —अर्थात् जो जलो के समीप जाते हैं वे जलो को जैसे प्राप्त होते वा जो जल मे घुसते हैं वे जैसे सब ओर से तर हो जाते हैं, इसी प्रकार जब हम सर्वेश्वर्य के समीप जाकर याचना करते हैं तो कामना तत्काल पूरी होती है।

[४६]

प्रातः वेला

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधय सत्य
श्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ४२१ ॥

पदार्थ—(सत्य श्रवसि) जिस मे ठीक ठीक श्रवण होता है वैसी। (सुजाते) जिस का जन्म शोभा युक्त है ऐसी (अश्वसूनृते) जिस मे प्रिय शब्द व्याप जाता है इस प्रकार की (वाय्ये) विस्तार वाली। (उष) प्रभात वैला (यथा चित्) जिस प्रकार (न) हम को (अबोधय) पूर्व जगाती रही है उसी प्रकार (अद्य) अब भी (दिवित्मती) प्रकाश वाली तू (महे राये) महाधनधान्य आदि के लिये (न) हम को (बोधय) जगा।

भावार्थ—इस मे उषा की प्रशंसा के साथ परमात्मा का यह उपदेश है कि जो लोग उषाकाल प्रभात वेला मे जागते हैं वे उद्यमी, कर्मण्य और धन धान्य आदि ऐश्वर्यशाली होते हैं। और जो स्त्री उषा के समान गुण कर्म स्वभाव वाली होती है उसके घर मे लक्ष्मी निवास करती है।

[४७]

मोक्ष प्राप्त्यर्थ ईश्वर को रथ बनाओ

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षु—
त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥४४०॥

पदार्थ—(अनव) मनुष्य लोग (अश्वाय) शीघ्र मोक्ष प्राप्त्यर्थं (ते) आप को (रथम्) रथ (तक्षु) बनाते हैं। (पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे हुए परमात्मन्! (त्वष्टा) विद्या से प्रदीप्त पुरुष आपको (द्युमन्तम्, वज्रम्) प्रकाशमान शस्त्र "बनाता है।"

भावार्थ—ईश्वर के भक्त लोग शीघ्र मोक्षपद को प्राप्त होने के लिये परमेश्वर को ही अपना रथ बनाते है और उसी को सर्वपाप शत्रुसंहारार्थं शस्त्र भाव से कल्पना करते हैं।

[४८]

यज्ञ करने वाले को धनलाभ

शं पद मघं रयीषिणो न काममव्रतो
हिनोति न स्पृशद् रयिम् ॥ ४४१ ॥

पदार्थ—प्रकरण से हे इन्द्र ! धनवन् ! परमात्मन् ! (अव्रत) यज्ञादि सुवृत न करने वाला कृपण पुरुष (रयिम्) धन को (न स्पृशत्) छूने भी नहीं पाता तथा अभीष्ट पदार्थों को (न हिनोति) नहीं प्राप्त होता परन्तु (रयीषिण) यज्ञादि उत्तम कर्मों मे धन देने वाले के लिये (शम् पदम्) कल्याण स्थान और (मघम्) धन होता है।

भावार्थ—जो लोग यज्ञादि उत्तम कर्मों में धनादि व्यय करते हैं वे धन धान्यादि सकल इष्ट पदार्थों को प्राप्त होते हैं और उसके विरुद्ध लोग दरिद्र होते हैं।

[४६]

परमात्मा प्राप्ति का आनन्द वर्णनातीत

प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मी न विभ्रदर्षसि ।
अभि देवाँ अयास्य ॥ ५०६ ॥

पदार्थ —(इन्दो) अमृतस्वरूप परमेश्वर ! वा ओषधे ! (दवान्) विद्वान् उपासको वा याज्ञिको को (अभि अयास्य) तू सर्वत्र प्राप्त होता है और (न) हमारे (महे) बडे (तुने) ज्ञानधन, वा धान्यादि धन के लिये (उर्मि न) तरग व लहर सी (विभ्रत्) धारण कराता हुआ (प्र, अर्षसि) उच्च भाव से प्राप्त होता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार सोम रस से उत्पन्न हुआ हर्ष मनुष्यो के हृदयो मे तरग सी उठाता है, उसी प्रकार परमात्मा की प्राप्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द भी उपासको के हृदय मे लहर सी उठाता है और मग्न कर देता है। इसको वे ही लोग जानते हैं जिन्हे अनुभव है ।

[५०]

सोम से वृष्टि

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे
सोमः सह इन्वन् मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यराति
वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥५४०॥

पदार्थ —(इन्दु) चूने या टपकने के स्वभाव वाला (वाजी) बलवान् (गोन्योघा) इन्द्रियों में निरंतर बल पुरुषार्थ हो जिस का ऐसा (सोम) सोमरस (इन्द्रे) इन्द्रियों के अधिष्ठाता अन्तःकरण में (सह) बल को (इन्वन्) पहुँचता हुआ यद्वा इन्द्र वृष्टि के कर्ता में बल पहुँचाता हुआ (पवते) चूता टपकता वा बरसता है और (रक्षः हन्ति) राक्षसगण का हननकर्त्ता तथा अरातिम् शत्रु का (परिबाधते) सर्वत्र संहार करता है। ऐसा सोम (वरिवः) श्रेष्ठ धन को (कृण्वन्) उत्पन्न करता हुआ (वृजनस्य) बल का सेना का (राजा) ऐश्वर्य कारी है।

भावार्थ —अर्थात् सोम रस के हवन से इन्द्र वृष्टि करता और मेघों का हनन करके धान्यादि धन का उत्पन्न करता है और सोम रस के सेवन से शरीर और मन को बल प्राप्त होता है जिससे शत्रुओं को जीत कर राज्यादि ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

[५१]

यज्ञ में श्रद्धापूर्वक दक्षिणा

प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥५५३॥

पदार्थ—(भृगवः) हे ज्ञानी पुरुषो ! जो कोई (अन्धस) सोमादि औषधि रूप अन्न का (सुन्वानाय) सम्पादन करने वाला (मर्त्त) मनुष्य अध्वर्यु और उसके उपलक्षण से अन्य ऋत्विज् हैं (तद्वचः) उसके या उनके वचन 'याचना' की (न प्र वष्ट) मत इच्छा करो अर्थात् बिना याचना ही दक्षिणा दो और (अराधसम्) बिना दक्षिणा के (मखम्) यज्ञ को (न हत) मत नष्ट करो किन्तु (श्वानम्) कुत्ता आदि कर्मविघ्नकारी प्राणिवर्ग को (अपहत) हटाओ ।

भावार्थ—अर्थात् यजमान को चाहिये कि अध्वर्यु आदि ऋत्विक् लोग जो सोमरस के सेवन आदि कामों को करते हैं उनकी याचना की प्रतीक्षा न करे, किन्तु बिना मांगे ही श्रद्धा और योग्यता अनुसार दक्षिणा दे । और बिना दक्षिणा के यज्ञ नष्ट न करे । लोक में भी (बिना दक्षिणा के यज्ञ हत-नष्ट है) इत्यादि कहावतों का मूल ऐसे ही मन्त्र जान पड़ते हैं ।

[५२]

ब्रह्मज्ञानोपदेशक पुण्यभागी

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं
देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥
॥५६४॥

पदार्थ —परमात्मा वा अन्न कहता है कि—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (देवेभ्य) वायु विद्युत आदि देवताओं से (प्रथमजा) पूर्वज (अस्मि) हूँ और (ऋतस्य) सच्चे (अमृतस्य) अमृत का (नाम) टपकाने वाला हूँ। (य) जो पुरुष (मा ददाति) मेरा दान करता है (स इत्) वही (एवम्) ऐसे (आवत्) प्राणियों की रक्षा करता है। "और जो किसी को न देकर आप ही खाता है" उस (अन्न, अदन्तम्) अन्न खाते हुए को (अहम्, अन्नम्) मैं अन्न (अद्मि) खा जाता हूँ नष्ट कर देता हूँ।

भावार्थ —अर्थात् परमात्मा कहता है कि मैं सब का प्राणाधार जीवनाधार होने से अन्न हूँ। जो लोग स्वयं मुझको जानकर अन्यों के लिये मेरा दान करते अर्थात् ब्रह्मज्ञानोपदेश करते हैं, वे प्राणियों की रक्षा करते और पुण्य के भागी होते हैं, परन्तु अन्यों को आदेश न करने वाले ज्ञानित्वाऽभिमानियों को मैं नष्ट कर देता हूँ।

[५३]

यश

यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम्
यशसाऽस्याः ससदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥६।११॥

पदार्थ—हे अग्ने ! परमेश्वर ! (मा) मुझे (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक (यश) कीर्ति को प्राप्त करावें । (मा) मुझे (इन्द्र बृहस्पति) राजा और विद्वान् पुरुष (यश) यश को प्राप्त करावें (भगस्य) ऐश्वर्य का (यशः) यश (विन्दतु) प्राप्त होवे । (यश) यश (मा प्रतिमुच्यताम्) मुझे कभी न छोडे। (यशस्वी) कीर्ति वाला (अहम्) मैं (अस्या) इस (ससद) विद्वत्सभा का (प्रवदिता) प्रगल्भता से बोलने वाला (स्याम्) होऊं ।

भावार्थ—"समस्त भूमण्डल मे, राजाओ और विद्वानो मे सर्वत्र मेरा यश हो । मेरी कहीं भी अपकीर्ति न हो । मैं सभाओ मे सुन्दर बोलने वाला होऊं ।" सम्पादक

[५४]

विशाल गौ गोष्ठ

सहर्षभा सहवत्सा उदेत विश्वारूपाणि
बिभ्रतीर्द्व्यूघ्नी ।
उरु पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आप
सुप्रपाणा इह स्त ॥६२६॥

पदार्थ —गौवो ! तुम (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपो को (बिभ्रती) धारण करती हुई (द्व्यूघ्नी) साय प्रात काल दूध देने वाली (सहर्षभा) साँडो सहित (सहवत्सा) बछड़ो सहित (उदेत) उच्च भाव से प्राप्त होओ (व) तुम्हारे लिये (ग्रयम्) यह (लोक) स्थान (उरु) लम्बा (पृथु) चौडा (ग्रस्तु) होवे। (इमा) य (ग्राप) जल (सुप्रपाणा) सुन्दर पीने योग्य होवें। इस प्रकार (इह) इस लोक म (स्त) सुख युक्त होग्रो।

भावार्थ —तात्पर्य यह है कि गौवो को साडो वैसा बछडा सहित दो काल दूध देने वाली रखना चाहिये और उन के गोष्ठ (खरक) लम्बे चौडे विशाल हो पीने को सुदर स्वच्छ जल हो।

[५५]

सेनापति

ईन्द्रो हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥६४६॥

पदार्थ —(हि) क्योंकि (शक्र) वह शक्तिमान् (ईन्द्रो) सबको दवा सकता है (तम्) उस (अपराजितम्) न हारने वाले किन्तु (जेतारम्) जीतने वाले को (ऊतये) रक्षार्थ (हवामहे) हम पुकारते है (स) वह (द्विषः) शत्रुओ को (अति) लाघ कर (न) हम को (स्वर्षत्) ले जावे जिस से (क्रतु) यज्ञ (छन्द) वेद और (ऋतम्) सत्य (महत्) बहुत हो ।

भावार्थ —अर्थात् सेनापति अन्यो को स्वाधीन करे, धनादि ऐश्वर्य के लिये उत्तम पुरुषार्थ को बतावे, शस्त्रास्त्रो का धारक, सत्कार योग्य, सब को प्रसन्न करने योग्य, वलियो मे बलिष्ठ, धनियों मे सर्वोत्तम धनी और दाता, ज्ञानवान् सूर्य के समान तेजस्वी, सेना के पुरुषों का नायक और रक्षक, स्तुति योग्य, शक्तिमान् विजयी, न हारने वाला, जहा उपद्रव हो वही रक्षार्थ जाने वाला और शत्रुओ को भगाने वाला होना चाहिये ।

[५६]

सोमपान

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विद ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतश ॥६६३॥

पदार्थ—(वृषभ) वीर्यवान् पुरुष वा इन्द्र। वर्षा करने वाला विद्युत्' (यस्यते) जिस तुम्ह सोम का (पीत्वा) पान करके (वृषायते) वृष के तुल्य पौरुष करता वा सिंचन करता है (अस्य स्वर्विद) इस सुखदायक का (पीत्वा) पान करके (सुप्रकेत) सुन्दर बुद्धि युक्त वा प्रकाश युक्त (स) वह पुरुष वा इन्द्र (इष) अन्न वा खेतियों को (अभ्यक्रमीत्) सब ओर से प्राप्त होता वा पकाता है। (न) जैसे (एतश) अश्व (वाजम्) बल को (अच्छ) प्राप्त होता अर्थात् बलिष्ठ हो जाता है।

भावार्थ—सोमपान से पुरुष का पुरुषत्व बढ़ता है उस से वह सन्तानोत्पत्ति में भले प्रकार समर्थ होता है। परन्तु मद्यपान के समान बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती किन्तु बुद्धिघ्नी है। इस में मादकता (नशा) नहीं है। इस सुखदायक पदार्थ के सेवन से यत्न पचाने का सामर्थ्य बढ़ कर बल बढ़ता है। यह पुरुष पक्ष का भाव है। दूसरे इन्द्र पक्ष में होम यज्ञ से तृप्त हुआ इन्द्र भले प्रकार बलिष्ठ होता और वृष्टि आदि पुष्कल करता है यह भाव है।

[५७]

राजा का चुनाव

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिध्यवितार ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ।७०६।

पदार्थ—हे राजन्! हम (कर्मन) व्यवहार [मुकदमे] में (त्वा) आपके (उप) शरण में आते हैं। (य) जो आप (धृषत्) हम पर अन्याय करने वालों का दण्ड आदि से दमन करते हैं (स) वह आप (उग्र) असह्य तेजस्वी (युवा) वीर पुरुष दृढाङ्ग (न) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (चक्राम) दौरा करते हैं। अन (सखाय) हम एक दूसरे के मित्र बनते हुए (सानसिम्, अवितारम्, त्वाम्, इत् हि) सम्भजनीय रक्षक आप का ही (ववृमहे) राज्य के लिये वरण करते हैं।

भावार्थ—प्रजावर्ग को चाहिये कि राजगद्दी के लिये ऐसे पुरुष का वरण करें जो कि व्यवहारों को सुने, देखे, दृढाङ्ग और दृढ व्यवसाय हो, जिस की उग्रता शत्रुओं को असह्य हो, जो राजभक्तों का सेवनीय और सब का रक्षक हो।

[५८]

ईश्वर स्तुति का प्रचार

शसेदुक्थ सुदानव उत द्युक्ष यथा नर ।
चकृमा सत्यराधसे ॥७१७॥

पदार्थ —(यथा) जिस प्रकार (नर) हम कर्म काण्ड के नायक लोग (सत्यराधसे सुदानवे) सत्य जिस का धन है जो शोभन दानी है उस इन्द्र परमात्मा के लिये (द्युक्षम्) प्रकाश का साधन भूत (उक्थम्) स्तोत्र (चकृम) करते हैं (उत) ऐसे ही (शस) तू भी उच्चारण कर (इत्) पाद पूरणार्थ है।

भावार्थ —अर्थात् मनुष्यों को परस्पर उपदेश से परमेश्वर की स्तुति, उपासना प्रार्थना का प्रचार करना चाहिये जिस से ज्ञान प्रकाश बढ़े।

[५६]

हमारे वैभव की कामना

त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥७१८॥

पदार्थ—अब स्तोत्र कहा जाता है कि—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (नः) हमारे लिये (वाजयु) अन्न की इच्छा वाले और (शतक्रतो) हे अनन्तज्ञान ! (त्वम्) आप (गव्यु) गौ आदि पशु की इच्छा वाले तथा (वसो) हे वास देने वाले ! (त्वम्) आप (हिरण्ययु) सुवर्णादि धन चाहने वाले हूजिये ।

भावार्थः—अर्थात् आप हमारे लिये ऐसी इच्छा करें कि हमारे पास अन्न, पशु, लक्ष्मी आदि सब सुख सामग्री विद्यमान हों ।

[६०]

ज्ञानलाभ के लिये ईश्वर पूजा

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ ७२० ॥

पदार्थ —(वज्रिन्) हे दुष्ट निवहरण ! नियन्त ! परमेश्वर ! मैं (अपस) कर्मकाण्ड के (निविष्टौ) नवीन यज्ञ आरम्भ में (अयत्) आप को छोड अन्य की (न घ ईम्) नहीं ही (आ पपन) स्तुति करता हूँ (उ) क्योंकि (तव इत्) आप के ही (स्तोमैः) स्तोत्रों से (चिकेत) ज्ञान पाता हूँ ।

भावार्थ —ज्ञान लाभ के लिये मनुष्यों को परमात्मा का परित्याग करके अन्य की स्तुति नहीं करनी चाहिये ।

[६१]

प्रभु साक्षात्कर्त्ता को आनन्द

इच्छन्ति देवा सुन्वन्त न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्रा ॥७२१॥

पदार्थ—हे इन्द्र! परमेश्वर! (देवा) विद्वान् लोग (सुन्वन्तम्) अपने साक्षात्कार कराते हुए आप की (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं, और (स्वप्नाय) निद्रा के लिये (न स्पृहयन्ति) नहीं इच्छा करते। किन्तु (अतन्द्रा) निरालस होकर (प्रमादम्) अत्यानन्द को (यन्ति) प्राप्त होते है।

भावार्थ—अर्थात् परमात्मा का साक्षात्कार चाहने और यत्न करने वालो के निद्रा आलस्यादि तमोगुण दूर हो जाते हैं निरन्तर आनन्द प्राप्त होता है।

[६२]

गुरु परम्परा से ईश्वर भक्ति

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रति नरम् ।
य ते पूर्वं पिता हुवे ॥७४४॥

पदार्थ—(प्रत्नस्य) सनातन (ओकस) मोक्ष पद के (अनु) आनुकूल्य से (नरम्) ले जाने वाले (तुविप्रतिम्) बहुत समय के प्रति पहुँचाने वाले (ते) आप को (हुवे) मैं स्तुत करता हूँ (यम्) जिस आपको (पूर्वम्) इस से पूर्व (पिता) मेरे गुरु ने (हुवे) स्तुत किया है।

भावार्थ—शिष्य प्रशिष्यों को गुरु परम्परा से परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करनी चाहिये, यह भाव है।

[६३]

सूर्यास्त से पूर्व भोजन

उदुस्त्रियाः सृजते सूर्य सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥७५.२॥

पदार्थ —(सूर्य) सूर्यलोक (उद्यन्) सदा उदित (नक्षत्रम्) नक्षत्र और (अर्चिवत्) किरणों वाला है और (सचा) एक साथ ही (उस्रिया) किरणों को (उत्सृजते) ऊपर को छोड़ता है। तथा च (उष) प्रभात वेला ! हम (तव) तेरे (च) और (सूर्यस्य) सूर्य के (व्युषि) प्रकाश में (इत्) ही (भक्तेन) अन्न से (सगमेमहि) समागम करें।

भावार्थ.—मनुष्यों को सदा सूर्यादि के प्रकाश में ही भोजन करना चाहिये अन्धकार में नहीं यह तात्पर्य है।

[६४]

सोमयाग से समृद्धि

अय पुनान उषसो अरोचयद् अयं
सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिर सोमो
हृदे पवते चारु मत्सर ॥ ८२३ ॥

पदार्थ—(अयम्) यह सोम (पुनान) पवित्र करता हुआ (उषस) प्रभात समयों को (अरोचयत्) प्रकाशित करता है (उ) और (अयम्) यह सोम (सिन्धुभ्य) नदियों से (लोककृत्) लोकों का कर्त्ता (अभवत्) है। (अयम्) यह (सोम) सोम (त्रि सप्त) एक मन, दस इन्द्रियां, दस प्राण, सब इक्कीसो को (आशिरम्) रस से (प्रपूरयन्) भरता हुआ (हृदे) हृदय के लिये (चारु) उत्तम (मत्सर) हर्ष कारक (पवते) पवन के समान बहता है।

भावार्थ—अर्थात् सोयाग से सुवृष्टि आदि होकर सुन्दर प्रभात समय होते हैं, नदियों के प्रवाह बढ़कर लोक की ऋद्धि होती है, सोम सेवन से प्राणादि का बल बढता है। यह सोम वायु को व्याप कर चित्त को हर्ष दायक होता हुआ वायु के समान बहता है।

[६५]

याज्ञिक की वृद्धि और रक्षा

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदा वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥८२६॥

पदार्थ—(यदा) जब (गोमत) गौ के सहित (वाजस्य) अन्न का (मघम्) धन (स्तोतृभ्य) ऋत्विजों को (महते) कोई यजमान श्रद्धा से दान करता तब (इन्द्रस्य) परमात्मा की (ऊतय) रक्षायें और (रातय) दान क्रियायें जो (पूर्वी) सनातन हैं (न विदस्यन्ति) उस यजमान पर क्षीण नहीं होती।

भावार्थः—अर्थात् श्रद्धा और विधि से यज्ञ करते हुए गौ आदि धन धान्य की दक्षिणा देने वाले यजमान को परमात्मा कृपया अनेक प्रकार के धन धान्यादि दान से उपस्कृत करता है और उसी की रक्षा करता है।

[६६]

यज्ञ द्वारा धन और बल

आ वसते मघवा वीरवद् यश समिद्धो द्युम्न्याहुत ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभीरागमत् ॥
॥८७६॥

पदार्थ—(मघवा) यज्ञ वाला (द्युम्नी) यश वाला (समिद्ध) प्रदीप्त (आहुत) सामने से होम किया हुआ अग्नि (वीरवत्) वीर पुत्रादि युक्त (यश) अन्न (आ वसते) देता है। (अस्य) इस अग्नि का (सुमति) शोभन बुद्धितत्त्व (वाजेभि) अन्नों सहित (न) हम (अच्छ) को (कुवित्) बहुत (आगमत्) प्राप्त हो।

भावार्थ—भले प्रकार अग्नि में होम करने से मनुष्य पुत्रादि सन्तान, उत्तम बुद्धि, बहुत धन धान्यादि को प्राप्त होते हैं।

[६७]

बुद्धि की ज्योति--वेद

पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मय ॥६५८॥

पदार्थ--(विश्ववित्) हे सर्वज्ञ ईश्वर ! (पवमानस्य) पवित्र करते हुए (ते) आपकी (सर्गा) वैदिक ऋचा रूपी धाराएं (प्र, असृक्षत) ऐसे छूटती हैं (न) जैसे (सूर्यस्येव रश्मय) सूर्य की किरणें।

भावार्थ--जैसे सूर्य की किरणें उदय होकर मनुष्य आदि प्राणियों की आंखों मे सहायता देती है, वैसे ही परमात्मा से वेद प्रकट होकर मनुष्यों की बुद्धियों को सन्मार्ग मे प्रवृत्त करते है ।

[६८]

सृष्ट्यारम्भ में वेद ज्ञान

अज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
क्रन्द देवो न सूर्य ॥६६०॥

पदार्थ—(पवमान) हे पवित्रस्वरूप ! पर मात्मन् ! (अज्ञान सूय देव न) उदित सूय देव की नाई (विधर्मणि) अन्त करण मे (क्रन्दन) वैदिक शब्दो को उत्पन्न करते हुए आप (वाचम्) वाणी को (इष्यसि) प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—जैसे प्रात काल होते ही उदित सूय प्रकाश फैलाता है इसी प्रकार परमात्मा सृष्टि आरम्भ होते ही ऋषियो के पवित्र अन्त करण मे वेदोपदेश करके उनकी वाणी को प्रेरित करता है।

[६६]

प्राण अपाण संयम का फल

प्रति वा सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् ।
अर्यमणं रिशादसम् ॥ १०६७ ॥

पदार्थ—मैं यजमान (मित्रं) प्राण और (वरुणम्) अपान इन (वाम) दोनों को (प्रति) प्रत्येक को जो (रिशादसम्) शत्रुओं को दबा रखने वाले और (अर्यमणम्) न्याय के समर्थक हैं इन को (सूरे) सूर्य (उदिते) उदय होते ही प्रति दिन प्रात काल (गृणीषे) स्तुत करता हूँ ।

भावार्थ—प्राण और अपान के सयम से मनुष्य शत्रुओं से नही दबता, उन्हे दबा सकता है, अन्याय को रोक कर न्याय धर्म का प्रचार कर सकता है। इस लिये उस को नित्य उठते ही प्रात काल शौचादि आवश्यक कार्य से निवृत्त होकर प्राण अपान के सयम का चिन्तवन करना चाहिये ।

[७०]

सोम से मेधादि की प्राप्ति

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ १०६४ ॥

पदार्थ—सोम ! (त्वम्) तू (विप्र) अनेक प्रकार से प्रसन्न करने वाला वा ब्राह्मण के सदृश्य सब का हितकारी तथा (कवि) बुद्धितत्त्व वाला होने से धारणावती बुद्धि का दाता (मदेषु) तेरे सेवन से हुए हर्षों के होने पर (सर्वधा) सब का धारक पालक, पोषक (असि) है। सो (त्वम्) तू (अन्धस) अन्न से (जातम्) उत्पन्न (मधु) मधु रस को (प्र) देता है।

भावार्थ—जो मनुष्य सोम के गुण जान कर उपयोग में लाते है वे उस से विविध अन्न मेधा और धृति को प्राप्त करते है।

[७१]

सूर्य चिकित्सा

आदित्यैरिन्द्र सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥
॥ ११११२ ॥

पदार्थ — पूर्व मन्त्र मे यह जो कहा गया कि परमेश्वर सूर्य किरणादि द्वारा हमारे यज्ञो और शरीर तथा सन्तान आदि को साधे, उस मे यह आशका करके कि सूर्य आदि द्वारा यज्ञ तो अवश्य सिद्ध होता है परन्तु सन्तानादि पर सूर्यादि का प्रभाव किस प्रकार है ? कहते है कि (इन्द्र) परमेश्वर सर्वशक्तिमान् (आदित्यै:) सूर्य किरणो और (मरुद्भि) विविध वायुओ के (सगण) गण सहित (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (भेषजा) औषधें (करत्) करे।

भावार्थ — यह तो प्रसिद्ध ही है कि सूर्य की किरणो और वायुओ से ही अनेक औषध उत्पन्न होते है जिन से हमारे देह सन्तान आदि उत्पन्न और रक्षित होते है। और अब तो सूर्य किरणादि से ही साक्षात् अनेक रोगो के दूर करने की रीति पर चिकित्सा होने लगी है, तब कहना ही क्या शेष है।

[७२]

दोनों लोक आनन्दमय

वय ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृह ।
नि नेदिष्ठतमा इव स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥१२३६॥

पदार्थ—(अध्रिगो) हे अचल ! (वसो) सब के निवास हेतो ! परमेश्वर ! (ते) तेरे (सुम्ने) सुख = मोक्षानन्द में (वयम्) हम तेरे सेवक (नि) निरन्तर (नेदिष्ठतमा) अत्यन्त समीप रहने वाले (स्याम) हो तथा (ते) तेरे (अस्य) इस ऐहिक सुख (राधसः) धन और (पुरुस्पृह, वसो) बहुतों के चाहे हुए निवास के हेतु (इव) अन्न के भी समीप रहने वाले होवें।

भावार्थ—तात्पर्य यह है कि हे परमेश्वर ! ऐसी कृपा हो कि जब तक हम जीवें तब तक धन धान्य आदि सम्पत्ति ऐहिक सुख साधन पास रहे और अन्त में मोक्ष के आनन्द भागी हों।

[७३]

पवमान सूक्ताध्ययन का फल

पावमानी स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
ऋषिभिः सम्भृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥१३००॥

पदार्थ —(पावमानी) सोम प्रकरण की ऋचाएं (स्वस्त्ययनी) कल्याणी हैं, (सुदुघा) सुन्दर फल की देने वाली हैं, वे (घृतश्चुत) जल की वर्षाने वाली हैं (ऋषिभि) ज्ञानी ऋषियो ने (रस) यह वेद का सार (सम्भृत) इकट्ठा किया है (हि) सो यह (ब्राह्मणेषु) ब्राह्मणों मे (अमृतम्) अमर बल (हितम्) रक्खा हुआ है ।

भावार्थ—अर्थात् जो पवमान सूक्त पढते हैं, उन को उसके अनुकूल आचरण करने से सब सुख, वर्षा, दीर्घायु आदि फल प्राप्त होते हैं, इसलिये पवमान सूक्त मानो अमृतरूप हैं और वेद का सार है ।

[७४]

प्रातः जागरण से समृद्धि

यदद्य सूर उदितोऽनागा मित्रो अर्यमा ।
सुवाति सविता भग ॥ १३५१ ॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (सूरे) सूर्य (उदिते) उदय होने पर प्रात काल (अनागा) निर्दोष (मित्र अर्यमा सविता भग) मित्र अर्यमा सविता भग नामक आकाशस्थ वायुभेद देवविशेष (सुवाति) उत्पन्न करे वह (अद्य) आज हम प्राप्त हों।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि प्रात काल सवेरे उठकर परमेश की उपासना आदि करें और प्रार्थना करें कि प्राणादि वायु जो सब सम्पत्तियों के कर्ता हैं और जो सूर्योदय के कुछ पूर्व से ही निर्दोष रहते हैं और जगत् का उपकार करते हैं हमारा भी उपकार करें। इसलिये यह भी ध्वनित हुआ कि मनुष्य को बहुत सवेरे के निर्दोष प्राणादि वायुओं का सेवन करना चाहिये जिस से सम्पत्ति बढ़ती है।

[७५]

प्रभु उपासक दीर्घजीवी

य: स्नीहितीषु पूर्व्यं संजामानासु कृष्टिषु ।
अरक्षद् दाशुषे गयम् ॥ १३८० ॥

पदार्थः—(य.) जो (पूर्व्यः) पुरातन परमेश्वर वा अग्नि (स्नीहितीषु सजगमानासु कृष्टिषु) मरती जाती प्रजाओ मे (दाशुषे) दान शील यज्ञ करने वाले मनुष्य के लिये (गयम्) प्राण को (अक्षरत्) सोचता है "उस अग्नि के लिये मन्त्रोच्चारण करें" यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है ।

भावार्थ:—भाव यह है कि यद्यपि सारी प्रजा मरती जाती दुनिया है, कोई अमर नही, परन्तु परमात्मा के उपासको और अग्निहोत्रियो को प्राण आदि मिलता है और वे दीर्घ जीवी होते हैं ।

[७६]

अग्निविद्या का अन्वेषण

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि।
धनञ्जयो रणें रणे ॥ १३८२ ॥

पदार्थ—(वृत्रहा) पापहन्ता वा शत्रुहन्ता (अग्नि) अग्नि (उत् अजनि) उत्पन्न हुआ है जो (रणे रणे) प्रत्येक संग्राम में (धनञ्जय) विजयप्रद है (उत) तब पूर्वक (जन्तव) आग्नेय विद्या के ज्ञाता प्राणी (ब्रुवन्तु) उपदेश्य उपदेशक भाव से प्रचार करें।

भावार्थ—जो संग्राम देशविजयार्थ चक्रवर्ती राज्यस्थापनार्थ प्रजा रक्षार्थ किये जावें उन में भी अग्निसिद्ध शस्त्र अस्त्र ही विजयप्रद हैं और जो संग्राम वायुगत आदि सूक्ष्म दुष्ट जन्तुओं से मनुष्य आदि के शरीरस्थ धातु आदि में स्वास्थ्य के लिये होता है उसमें भी आग्नेय द्रव्य जो होमादि द्वारा उत्पन्न होकर शरीरों और वायु आदि में फैलते हैं। उन्हीं के द्वारा विजय होना है इसलिये परमात्मा का उपदेश है कि लोग तर्क वितर्क पूर्वक उपदेश्य उपदेशक वा शिष्याध्यापक होकर इस विद्या में नया नया अविष्कार करें।

[७७]

यज्ञ से धनधान्य और सन्तान

ब्रह्म प्रजावदाभर जातवेदो विचर्षणे ।
अग्ने यद् दीदयद् दिवि ॥ १३६८ ॥

पदार्थ—(जातवेद) ज्ञानोत्पादक ! (विचर्षणे) विशेष करके दृष्टि के सहायक ! (अग्ने) अग्ने ! (प्रजावत्) पुत्र पौत्रादि सन्तान युक्त (ब्रह्म) धन वा अन्न [निघ० २।१० और २।७] (आभर) प्राप्त करा । (यत्) जो अन्न वा धन (दिवि) आकाश मे (दीदयत्) प्रकाशमान होवे ।

भावार्थ—भाव यह है कि होमादि द्वारा अग्नि की परिचर्या करने वाले के धन धान्य, सन्तान आदि की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ।

[७८]

प्रभो ! सुख साधन प्रदान कर

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
अस्माँ चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ।
॥ १४२२ ॥

पदार्थ—पूर्वोक्त मन्त्र से अनुवृत्ति लाकर हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (ते) तुम्हारी (सुमतौ) उत्तम गति जो वेदोपदेश रूप है उसमें (वयम्) हम (वाजिन) बलवान् और साधनावान् (भूयाम) होवें। (न) हम को (अभिमातये) अभिमान के लिये (मा) मत (स्त) मारो किन्तु नम्र करके (चित्राभि) अपनी विचित्र (अभिष्टिभि) चाहने योग्य रक्षाओं से (अस्मान्) हम को (अवतात्) रक्षित करो तथा (न) हम को (सुम्नेषु) सुखो मे (आ यामय) निर्वाहित करो गुज़ारो ।

भावार्थ—ईश्वर भक्त मनुष्यो को उसकी कृपा निरभिमानता रक्षा और सुख से निर्वाह बल तथा अन्नादि सर्व सुख के साधन मांगने चाहिये यह भाव है।

[७६]

रक्षा की प्रार्थना

अद्याद्या श्व श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥ १४५८ ॥

पदार्थ—(सत्पते) हे सत्पुरुषों के रक्षक ! पालक ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (नः) हमारी (अद्य अद्य) आज (च) और (श्व श्व) कल कल और (परे) परले दिन, इस प्रकार (विश्वा अहा) सब दिन (त्रास्व) रक्षा करो (च) और (नः) हम (जरितॄन्) स्तोताओं की (दिवा) दिन में (च) और (नक्तम्) रात्रि में भी (रक्षिषः) रक्षा करो।

भावार्थ—भाव यह है कि आजकल परसों इत्यादि सब दिन परमात्मा से रक्षा की प्रार्थना करनी चाहिये क्योंकि वह सब काल में दिन रात सत्पुरुषों की रक्षा और पालन करने वाला है।

[८०]

यज्ञानुष्ठान से स्त्री और सन्तान प्राप्ति

जनीयन्तो न्वग्रव पुत्रीयन्त सुदानव ।
सरस्वन्त हवामहे ॥ १४६० ॥

पदार्थ —(जनीयन्त) स्त्री चाहते हुए (पुत्रीयन्त) और पुत्र चाहते हुए (सुदानव) यज्ञादि परोपकार करने वाले (अग्रव) उपासक हम (नु) आज (सरस्वन्तम्) सर्वज्ञ परमात्मा की (हवामहे) पुकारते हैं।

भावार्थ —अर्थात् यज्ञादि परोपकार करने वालो को परमात्मा की यज्ञानुष्ठान जनित कृपा से स्त्री पुत्र आदि सब ऐश्वर्य सुख भोग सम्पत्ति प्राप्त होती हैं।

[८१]

गायत्री

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १४६२ ॥

पदार्थ—हम उपासक लोग उस (सवितु) सर्वोत्पादक, सर्वपिता (देवस्य) प्रकाशमान ज्योति स्वरूप परमेश्वर के (तत्) उस अनिर्वचनीय (वरेण्यम्) वरणीय भजनीय (भर्ग) तेज का (धीमहि) ध्यान करते हैं (य) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) अत्यन्त प्रेरित करे।

भावार्थ—अर्थात् जो सर्वजगदुत्पादक, सर्व पिता, सविता देव, ज्योति स्वरूप परमात्मा हमारी धर्मादि विषयक बुद्धियों को भले प्रकार प्रेरित करे उस जगदीश्वर के भजनीय और भर्ग = अविद्या आदि दुःखदायक विघ्नों को भून डालने वाले ज्ञानस्वरूप का हम ध्यान करते हैं।

[८२]
जगत् हितकारक सूर्य

वावृधान शवसा भूर्योजा
शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि
स ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ १४८४ ॥

पदार्थ—(वावृधान) उदय होकर बढ़ता हुआ (भूर्योजा) अतिबली (शत्रु) दुष्ट जन्तु नाशक सूर्य (शवसा) बल से (दासाय) हानिकारक दुष्ट जन्तु के लिये (भियसम्) भय का (दधाति) धारण करता है (च) और (अव्यनत्) अप्राणी (च) तथा (व्यनत्) प्राणी ये सब (प्रभृता) पोषित वा धारित भूतमात्र (सस्नि) भल प्रकार शोधित हुए (मदेषु) हर्षों में (ते) उस सूर्य के लिये (सनवन्त) संगत होते हैं।

भावार्थ—सूर्य चराऽचरात्मा होने से सब का धारक पोषक और हानि वा रोग आदि कारक वायु या जल के विकार से उत्पन्न जन्तुओं का नाशक उन का शत्रु होकर जगत् का उपकार करता है।

[८३]

यज्ञमहिमा

आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
अङ्‌ग्धि खं वर्तया पविम् ॥ १५२६ ॥

पदार्थ —(अग्ने) अग्ने ! (स्थूरम्) स्थूल बहुत (पृथुम्) विस्तृत (रयिम्) धन को (आभर) प्राप्त करा और (खम्) आकाश को (पविम्) स्वच्छ शुद्ध (गोमन्तम्) किरणों वाला (वर्तय) वर्त्ता ।

भावार्थ —होम से सुसेवित अग्नि द्वारा पुष्कल धन धान्य की प्राप्ति, आकाश की स्वच्छता, धूप वर्षा प्राण वायु आदि का ठीक ठीक बर्ताव और प्रकाश होता है ।

[८४]

अग्निविद्या

ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्व पति ।
स्तोता स्या तव शर्मणि ॥ १५३३ ॥

पदार्थ —(अग्ने) अग्ने ! तू (स्व) सुख का (पति) स्वामी है और (वार्यस्य) वरणीय (दात्रस्य) दान करने योग्य धनधान्य का (ईशिषे) स्वामी है, अत मैं (शर्मणि) सुख चाहूँ तो (तव) तेरा (स्तोता) गुण वर्णनकर्त्ता (स्याम्) होऊ ।

भावार्थ —अग्नि विद्या से मनुष्य उत्तम धन धान्यादि से जो दानादि में काम में लाये जावें उन के स्वामी हो सकते हैं अत मनुष्यो को अग्नि विषयक विज्ञान प्राप्त करने वाला होना चाहिये और यह तब हो सकता है जब कि वे अग्नि के स्तोता =गुण खोजने में श्रम करने वाले हो ।

[८५]

यज्ञ करो

त्वा दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाह दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ १५६८ ॥

पदार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (देवास.) देवता (च) और (मर्त्तास) मनुष्य (च) और अन्य सब (युगे-युगे) समय समय पर (अमृतम्) सुखदायी, अमर (त्वाम्) तुझ को (हव्यवाहम्) हव्य ले जाने वाला (दूतम्) दूत (दधिरे) बनाते है तथा (जागृविम्) जागने और जगाने चेताने वाले (विभुम्) काष्ठादि मे व्यापे हुए (पायुम्) रक्षा करने वाले (ईड्यम्) प्रशसनीय (विश्पतिम्) प्रजा पालक अग्नि की (नमसा) हव्य अन्न से (निषेदिरे) उपासना करते है।

भावार्थ—सूर्यादि देव जैसे स्वाभाविक होम करते है तथा अन्य प्राणी करते है, वैसे मनुष्यो को भी करना चाहिये।

[८६

जो मांगूं वही दे

गौरो ग्रश्वस्य पुरुकृद गवामस्युत्सो देव हिरण्यय ।
न किर्हि दान परि मर्धिषत्वे यद यद् यामि तदामर ॥
॥१५८०॥

पदार्थ—(देव) हे दिव्य ! (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (ग्रश्वस्य) प्राण वा घोडो का (गौर) भरपूर करने वाला (ग्रसि) है और (गवाम्) इन्द्रियों वा गौग्रो का (पुरुकृत्) बहुत करने वाला है अर्थात् तेरे प्रसाद से प्राण और इन्द्रिया ग्रच्छे प्रकार मिलते और बलते है वा घाटे गौ आदि उपयोगी धन धान्यादि की कमी नहीं रहती सो तू (हिरण्यय) ज्योति स्वरूप और (उत्स) कुए के समान गम्भीर है (त्वे) तेरे (दानम्) दिये दान को कोई (हि) निश्चय (नकि) नहीं (परिमर्धिषत्) लूट सकता =नष्ट कर सकता ग्रत (यत् यत्) जो जो (यामि) मागता हूँ (तत्) वह वह (ग्राभर) भरपूर कर दे।

भावार्थ—ईश्वर की कृपा से सभी प्रकार के भौतिक एव आध्यात्मिक ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। सब शक्तिमान् ईश्वर के दान ग्रखण्डनीय है ग्रत उससे ही याचना करनी चाहिये। सम्पादक

[८७]

उपासक को धन प्राप्ति

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥
॥१५८४॥

पदार्थ —(दस्म) साक्षात् करने योग्य ! (विश्पते) प्रजापते ! परमात्मन् ! (सुदानवः) जिन्होने अच्छे दान किये है वे भाग्यवान् (देवयवः) देवो को चाहने वाले जन (रथ्यम्) रथ के ले चलने वाले (अश्वम् न) घोडे के समान कर्म फल को पहुँचाने वाले तुझ को (गीर्भि) स्तोत्रो से (मर्मृज्यन्ते) स्तुत करते है क्योकि तू (मघोनाम्) ज्ञान यज्ञ अनुष्ठानियो के (तोके) पुत्र (तनये) और पौत्र (उभे) दोनो मे (राध) धन धान्यादि को (पर्षि) देता है ।

भावार्थ.—परमात्मा की भले प्रकार उपासना प्रार्थना करने वाले भाग्यशाली जनो के पुत्र पौत्रादि सन्तति पर्यन्त को धन धान्यादि की कमी नही रहती, इसलिये वह कर्म फल दाता सदा स्तुति के योग्य है ।

[८८]

उस का यज्ञ देखो और स्वयं भी करो

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वय यजस्व तन्वांऽ स्वाहिते ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥१९८८॥

पदार्थः—(विश्वकर्मन्) हे विश्वस्रष्ट ! परमेश्वर ! (वावृधान) जगत् की वृद्धि करते हुए आप ! (स्वाहिते) अपने आप आधान किये हुए (तन्वाम्) विस्तृत अग्निकुण्ड मे (हविषा) हव्य से (स्वयम्) अपने आप (यजस्व) यजन करते है, (अन्यै) साधारण अन्य अज्ञानी (जनास) मनुष्य (इह) इस विषय मे (अभितः) सर्वत (मुह्यन्तु) भूलते है तो भूलो परन्तु (अस्माकम्) हम मे (मघवा) यज्ञ वाला पुरुष (सूरिः) पण्डित, जानने वाला और आप के यज्ञ को देखकर स्वय यज्ञ करने वाला (अस्तु) होवे ।

भावार्थ—जगत् को धन धान्य आरोग्यादि से बढाते हुए परमात्मा ने स्वय सूर्यादि लोक बडे विस्तृत यज्ञकुण्डो मे अग्न्याधान करके उन मे ओषधि वनस्पति आदि का होम कर रक्खा है जिस को प्राय. अज्ञानी लोग नही जानते सो मत जानो परन्तु इनमे से याज्ञिक लोग इस रहस्य को जानने वाला और आपके यज्ञ को देखकर स्वय यज्ञ अनुष्ठान करने वाला होवे ।

[८६]

प्रभु कृपा से श्रेष्ठ बुद्धि मिलती है

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।
नृवत् कृणुह्यूतये ॥१५६३॥

पदार्थः—हे सकल जगत्पोषक ! पूषन् ! परमेश्वर ! (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (गोषणिम्) गौ देने वाली (उत) और (अश्वसाम्) घोड़े देने वाली (उत) और (वाजसाम्) अन्न वा बल देने वाली (धियम्) बुद्धि को (कृणुहि) कीजिये ।

भावार्थ—सम्पूर्ण जगत् के पालक पोषक परमेश्वर वा सूर्य किरण समूह के प्रसाद से मनुष्यों को वैसी बुद्धि प्राप्त होती है जिस से गौ, अश्व, अन्न, बल आदि सब सुखभोग की सामग्री सुलभ हो ।

[९०]

ईश्वरोपासना से बल प्राप्ति

सनेमि त्वमस्मदा अदेव कच्चिदत्रिणम् ।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥१६१३॥

पदार्थ—(इन्दो) हे सोम ! वा परमेश्वर ! (त्व) तू (सनेमि) सनातन पुरानी मित्रता को (आ) पर और (अदेवम्) देव विरोधी (कञ्चित्) किसी (अत्रिणम्) भक्षक राक्षस को (अस्मत्) हम से (अप) दूर कर। (बाध) बाधकों को (साह्वान्) तिरस्कृत करता हुआ तू (परि) हटा और (द्वयुम्) भीतर बाहर दो भेद रखने वाले कपटी को वर्जित कर।

भावार्थ—परमेश्वर की उपासना या सोमयाग करने वाले मनुष्यों से इस प्रकार का बल उत्पन्न होता है जिस से वे अपने विरोधी सब अनिष्टों के निवारण में समर्थ होते हैं।

[६१]

यज्ञ से रक्षा

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि
तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं
पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१६२७॥

पदार्थ —(शिपिविष्ट) हे सूर्य किरणों में व्याप्त ! (विष्णो) यज्ञ ! (ते) तेरे (आसा) मुख में (वषट्) वषट्कारपूर्विका आहुति (आकृणोमि) करता हूं (तत्) उस वषटकार पूर्वक (मे) मेरे (हव्यम्) घृतादि को (जुषस्व) तू सेवित=स्वीकृत कर (मे) मेरी (सुष्टुतयः) सुन्दर स्तुति युक्त (वाचः) वाणियां (त्वा) तुझ यज्ञ को (वर्धन्तु) बढावें (यूयम्) तू (स्वस्तिभिः) कल्याणों, भलाइयों से (सदा) सर्वदा (नः) हमारी (पात) रक्षा कर।

भावार्थ —जो लोग यज्ञानुष्ठान करते, स्वाहा, स्वधा, वषट् श्रौषट् वौषट इत्यादि यथा विनियोग शब्दों के द्वारा उस यज्ञ के प्रचार तथा अनुष्ठान से लोक में यज्ञ को बढाते हैं यज्ञदेव सदा सब भलाइयों द्वारा उनकी रक्षा करता है। यह भाव है।

[६२]

बुद्धि तथा कर्मों का सामर्थ्य दो

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया॥
॥१६६३॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर के (वयुनेषु) प्रज्ञानों में (उरामथि) हृदय दुःखदायक (वारण) मार्ग रोकने वाला लुटेरा (वृक) चोर (चित्) भी (आ—भूषति) सीधा हो जाता है (स) वह सब शक्तिमान् (इन्द्र) परमेश्वर! तू (न) हमारे (इमम्) इस (स्तोमम्) स्तोत्र को (जुजुषाण) स्वीकृत करता हुआ (चित्रया) विचित्र (धिया) बुद्धि वा कर्म से (आगहि) प्राप्त हो।

भावार्थ—क्रूरकर्मी चोर डाकू लुटेरे भी जिस परमेश्वर के सामने सीधे होकर निजकर्म फल भोग में परतन्त्र हो जाते हैं वह सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर हमारी पुकार सुने और हम को विचित्र बुद्धि व कर्म करने का पुरुषार्थ देवे।

[६३]

हमारी उषाएं

उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥१७२६॥

पदार्थ —(गोमति) हे गौवो वा किरणो वाली ! (अश्वावति) घोडो वा प्राणो वाली ! (विभावरी) प्रकाश वाली ! (सूनृतावति) प्रिय सत्यवाणी वाली ! (उष) प्रभात वेला ! तू (अस्मे) हम तेरे यजन करने वालो के लिए (अद्य) अब (इह) यहा (रेवत्) धनयुक्त प्रत्य भोग्य पदार्थ हो, ऐसा (व्युच्छ) अन्धकार को निवृत्त कर ।

भावार्थ —उषाकाल मे उत्तम सुन्दर गौवें वा किरणें हो, उत्तम घोडे वा प्राण हों, सुन्दर प्रकाश हो, प्यारी वाणी को मनुष्य पशु पक्षी आदि बोल रहे हो, उषा का यश हो रहा हो, ऐसी उषा= प्रभात वेला हम को हों, जिससे धन धान्यादि सुख वृद्धि पूर्वक अन्धकार का निवारण नित्य हुआ करे ।

[६४]

प्रातः यज्ञ करने वाले सौभाग्य पाते हैं

युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उप ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥१७३०॥

पदार्थ—(वाजिनीवति) हे हव्य अन्न पाई हुई ! (उप) प्रातर्वेला ! तू अपने (अरुणान्) लाल (अश्वान्) घोड़ों=किरणों को (हि) निश्चय (युङ्क्ष्व) जोत (अथ) फिर (न) हमारे लिये (विश्वा) सब (सौभगानि) सौभाग्यों को (आ वह) पहुँचा।

भावार्थ—जो लोग उषाकाल में उठ कर यज्ञ करते हैं और उस यज्ञ द्वारा उषा को हव्य अन्नवती बनाते हैं, वे अरुणोदय के उस उत्तम प्रभात से सब सौभाग्य पाते हैं।

[६५]

उषा के मिस से स्त्रियों को उपदेश

या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिव ।

सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १७३८ ॥

पदार्थः—(सुनीथे) सुन्दर प्राप्ति वाली ! (शौचद्रथे) प्रकाशक रथ=रमणीय स्वरूप वाली ! (सहियसि) अत्यन्त बलवति ! (सत्यश्रवसि) सच्चे यश वाली ! (अश्वसूनृते) व्यापक प्यारे शब्द वाली ! (दिव दुहित) द्युलोक वा सूर्य की पुत्रि ! उषा ! देवि ! (या) जो तू (व्यौच्छ) पूर्व अन्धकार का नाश करती थी (सा) वही तू (व्युच्छ) अब भी अन्धकार का निवारण कर ।

भावार्थ—उषा=प्रभात वेला की स्तुति के बहाने मनुष्यों और स्त्रियों को परमात्मा का उपदेश है कि जो लोग उषा काल में उठते हैं व बड़े धन धान्यादि ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं, और जिन घरों में उषा के तुल्य गुणवती स्त्रियें होती हैं वहां भी धन धान्यादि की वृद्धि होती है। जैसे उषा का सुन्दर दर्शनीय जन्म सब को आह्लाद उत्पन्न करता है, वैसे उषा काल में सब जन्तु प्यारा शब्द करते हैं, जैसे उषा सब और विस्तृत होती है और जैसे प्रकाशमान है, वैसे ही उत्तम स्त्रियों को भी बनना चाहिये।

[६८]

जल चिकित्सा

तस्मा अर गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च न ॥१८३९॥

पदार्थ —(आप) जलो ! तुम (यस्य) जिस अशुद्धि आदि पाप के (क्षयाय) नाशार्थ (व) तुम को हम (अरम्) पूर्णतया (गमाम) प्राप्त करते है (तस्मै) उस अशुद्धि आदि नाश के लिये (जिन्वथ) प्रसन्न, तृप्त करो (च) और (न) हम विधिपूर्वक जल का सेवन करने वालो को (जनयथा) उत्पन्न करो सन्तानो से बढाओ ।

भावार्थ—जो मनुष्य विधिपूर्वक जल का सेवन करते हैं वे सर्वाङ्ग शुद्ध नीरोग होते हुए पुत्रादि सन्तति से बढते हैं ।

[६६]

वायु सेवन जीवन प्रद

उत वात पितासि न उत भ्रातोत न सखा ।
स नो जीवातवे कृधि ॥१८४१॥

पदार्थ —(उत) और (वात) हे वायो ! तू (न) हमारा (पिता) पालक (उत) और (भ्राता) सहायक (उत) और (न) हमारा (सखा) मित्र हितकर (असि) है (स) वह तू (न) हम को (जीवातवे) जीवन के लिये (कृधि) समर्थ कर ।

भावार्थ —यथाविधि वायु का सेवन करने वालों का वायु ही पिता भ्राता और मित्र के समान गुणकारी उपकारी होकर उनको दीर्घ जीवन देता है । वायु जीवन है इस में सन्देह नहीं ।

[१००]

स्वस्ति

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदा. ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१८७५॥

पदार्थ —(वृद्धश्रवा) जिस का सब से बढ़ कर यश है वा सब से अधिक वेदमन्त्रो मे श्रवण है वह (इन्द्र) इन्द्र देवराज (न) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख, कल्याण वा अविनाश को (दधातु) धारण करे। (विश्ववेदा) सब का लाभ कराने वा ज्ञान कराने वाला वा जानने वाला (पूषा) पोषण करने वाला पूषादेव (न) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख कल्याण वा अविनाश को धारण करे। (अरिष्टनेमि) जिसकी नेमि=नीति वा चाल रोग रहित है वह (तार्क्ष्य) विद्युद्विशेष देव (न) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख कल्याण वा अविनाश को धारण करे (बृहस्पति) बृहस्पति रक्षक, बड़े बड़े सूर्यादि का भी धारक, पालक, पोषक देव विशेष (न) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख कल्याण वा अविनाश को परमेश्वर की कृपा से धारण करे। (स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु) इतना पाठ दो बार ग्रन्थ समाप्ति सूचनार्थ है।